आत्मानन्द
आरोग्य मंदिर
प्रकाशन

आरोग्य-ग्रंथमाला—१३

योगासन

[रोग-निवारण और स्वास्थ्य-संस्कारके लिए]

लेखक

आत्मानंद

आरोग्य-मंदिर-प्रकाशन

मुख्य विक्रेता : सस्ता साहित्य-मंडल, नयी दिल्ली

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर,
गोरखपुर

प्रथम बार : जुलाई १९५७
द्वितीय बार : जुलाई १९६१
मूल्य : दो रुपया

मुद्रक
जे० के० शर्मा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

भूमिका

योगासन हिंदुस्तानकी ही नहीं, संभवतः संसारकी प्राचीनतम व्यायाम-पद्धति है और संसारके सभी व्यायामाचार्योंने इसे एक स्वरसे सभी व्यायाम-पद्धतियोंमें श्रेष्ठ माना है। वस्तुतः यही एक व्यायाम-पद्धति है जो शरीरको स्वस्थ और सुडौल बनानेके साथ-साथ नाड़ियोंको भी सबल बनाती है और नाड़ियोंके सबल बनानेमें ही आसनोंका उपचारात्मक रहस्य छिपा हुआ है।

योगासन अंग-प्रत्यंगको तो पुष्ट करते ही हैं, पर इनकी मुख्य विशेषता यह है कि चाहे जिस अंग—पाचन-प्रणाली, मलनिष्कासन-प्रणाली आदि—को उससे संबंध रखनेवाला आसन कर पुष्ट बनाया जा सकता है और आसनोंके सारे अंगोंका, समस्त शरीरका कार्य संचालित करनेवाली नाड़ियोंके लिए प्रभावकर होनेके कारण इनके जरिये सभी अंगोंकी अव्यवस्था—रोग—को भी दूर किया जा सकता है।

आजके बुद्धिजीवी व्यक्तिकी सबसे बड़ी समस्या किसी कार्यमें मन-को केंद्रित कर सकना है। यह कार्य आसनोंद्वारा इसलिए स्वतः सिद्ध होता है कि आसन नाड़ियोंको शक्तिशाली बनाते हैं और मनपर नाड़ियोंका प्रभाव होनेके कारण आसन करने लगनेपर मन स्वयं वशमें आता जाता है।

यौवन सबल नाड़ियोंकी ही दूसरी संज्ञा है अतः आसनोंके समान यौवन-रक्षणका दूसरा साधन नहीं है।

आसनोंके इन गुणोंको देखते हुए ही इनके प्रचारके लिए 'योगासन' का प्रकाशन किया जा रहा है, पर ऐसा नहीं है कि आसनोंपर पुस्तकें न हों। आसनोंपर हिंदुस्तानकी हर भाषामें एक नहीं, अनेक पुस्तकें हैं, पर

किसीमें आसनोंकी विधि ठीक तरह नहीं समझायी गयी है तो किसीमें आसनोंके चित्र शुद्ध नहीं हैं और किसीमें बहुतसे उपयोगी आसन छोड़ दिये गये हैं। अधिकांश लेखकोंने तो अपना "अहम्" रखनेके लिए आसनों-को विकृत भी कर दिया है। आसनोंको शुद्ध रूपमें करनेपर ही उनके गुण प्रत्यक्ष हो सकते हैं। योगियोंनें एक-एक आसनको वर्षों कर और कराकर जिन लाभोंके होनेका निश्चय किया है उन्हींका उन्होंने वर्णन किया है और ये लाभ किसीको भी उसी हालतमें हो सकते हैं जब आसनों-को शुद्ध रूपमें अर्थात् उन योगियोंकी बतलायी हुई विधिके अनुसार किया जाय।

हम सोलह वर्षोंसे आरोग्य-मंदिरमें आये हुए रोगियोंपर आसनों-का उपचारके एक मुख्य अंगके रूपमें प्रयोग करते आ रहे हैं और इस अवधिमें जिन आसनोंको रोग-निवारक और स्वास्थ्यप्रदायक पाया है उन्हींका वर्णन इस पुस्तकमें श्रीआत्मानंदजीने किया है। पुस्तकको उप-योगी बनानेके लिए आसनाभ्यासीको जिन आहारादिसंबंधी नियमोंके पालन और यम-नियम आदिके अनुशीलनकी आवश्यकता होती है उनका वर्णन सरल और सुबोध भाषामें पुस्तकके आरंभमें कर दिया गया है और अंतमें प्राणायाम आदिकी विधिके अलावा एक तालिका दे दी गयी है जिसमें यह बताया गया है कि किस जीर्ण रोगमें कौन-कौनसे आसन लाभकर सिद्ध होते हैं।

इस पुस्तकको हिंदी-संसार प्रेमपूर्वक अपनायेगा और यह उसके लिए उपयोगी सिद्ध होगी ऐसी हमें आशा है।

आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर
२१-१०-५७

विषय-सूची

चित्र-सूची

प्राक्कथन

व्यायाम क्यों ?

गति प्रकृतिका शाश्वत विधान है। मनुष्यकी दृष्टि और बुद्धि जहांतक जाती है सर्वत्र गति ही देख पड़ती है। चंद्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, पृथ्वी सूर्यकी और सारा सौरमंडल किसी और बड़े पिंडकी परिक्रमा करता होगा। इस प्रकार अणुसे लेकर बड़े-से-बड़े पिंडतक सभी गतिके सूत्रमें बंधे हुए हैं। गतिशील होनेके ही कारण यह लोक, जिसमें हम निवास करते हैं, 'जगत्' और 'संसार' कहलाता है। और तो क्या, इस सृष्टिका मूल 'ब्रह्म' भी तो अपनी वृद्धि या विस्तार (बृंह-वृद्धौ) की क्रियाके कारण गतिशीलताका ही द्योतक है। गति ही सारी सृष्टिके अस्तित्वका भी कारण है। अगर किसी कारणसे एक क्षणके लिए भी इस गतिमें विराम आ जाय तो क्या परिणाम होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती—शायद वही महाप्रलयकी अवस्था होगी जब सारी सृष्टि छिन्न-भिन्न होकर पुनः ब्रह्ममें लीन हो जायगी। प्रकृतिका यह विधान सबपर लागू है—न तो कोई उसके क्षेत्रसे बाहर जा सकता है और न कोई उसका अपवाद हो सकता है। प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका दम भरनेवाले या प्रयास करनेवाले मनुष्यको भले ही इसका ज्ञान या अनुभव न हो, पर उसके लिए भी इस विधानका पालन अनिवार्य है अन्यथा उसका अस्तित्व ही असंभव हो जायगा।

जीवनका रहस्य

प्रकृति अपनी कृतिकी रक्षा करने और उसका अस्तित्व बनाये रखनेका पूरा प्रयत्न करती है, इसीलिए वह किसी प्राणीका निर्माण करते समय

उसे आवश्यक शक्ति प्रदान कर देती और उस शक्तिके रक्षण, पोषण और संवर्द्धनके लिए गति भी उसके साथ कर देती है। शक्ति गतिका संचालन करती है और गति शक्तिका उत्पादन; इस प्रकार दोनों अन्योन्याश्रय संबंधमें बंधकर काम करती हुई प्राणीका अस्तित्व बनाये रखती हैं। अस्तित्व-रक्षाके लिए प्रकृतिका यही विधान है और जीवनका रहस्य भी यही है। अगर इन दोनोंमेंसे किसी एकका, विशेषकर शक्तिका पोषण करनेवाली गतिका अभाव हो जाय तो जीवनका आगे बढ़ना असंभव हो जायगा, इसलिए एक प्रकारसे गति ही जीवन और उसका अभाव मृत्यु है।

जो प्राणी प्राकृतिक अवस्थामें जीवन व्यतीत करते हैं उनमें जीवनके लिए आवश्यक इन दोनों साधनोंका पारस्परिक संबंध जल्द बिगड़ने नहीं पाता—उनकी स्थिति ही ऐसी होती है जिसमें ये दोनों बातें आप-ही-आप सुचारुरूपमें चलती रहती हैं। आदिम मनुष्यकी स्थिति भी ऐसी ही थी। उसे आहार प्राप्त करने तथा हिंस्र जंतुओंसे अपनी रक्षा करनेके लिए गतिका ही भरोसा करना पड़ता था और उस जीवनमें शारीरिक क्रियाएं भी ऐसी ही होती थीं कि शरीरकी सारी पेशियों और अंगोंका निरंतर उपयोग होता रहता था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता था कि जीवनधारण-संबंधी शरीरकी सारी प्रक्रियाएं प्राकृतिक रूपमें होती रहती थीं जिससे वह पूर्णतः स्वस्थ और सशक्त बने रहनेके साथ-साथ दीर्घजीवी भी होता था।

मस्तिष्कका प्रयोग

आदिम मनुष्यको जीवन तो वन्य पशुओंके साथ ही बिताना पड़ता था, पर उसकी स्थिति उन सबसे बिलकुल भिन्न थी। प्रकृतिने उसे न तो अन्य जीवोंपर आक्रमणकर उन्हें फाड़ खानेके लिए पैने दांत और नख दिये, न उनका सामना करनेके लिए हाथी-जैसा बल या भैंसेकी तरह सींग दिये और न उनसे प्राण-रक्षाके लिए हिरनकी तरह चौकड़ी भरनेकी

शक्ति या उछलकर पेड़पर चढ़ जानेके लिए विशेष प्रकारकी पेशियां और फुर्ती ही दी। हां, उसने एक ऐसी चीज अवश्य दी जो अन्य जीवोंमें वैसी नहीं थी और वह है उसका मस्तिष्क या सोचने-समझनेकी शक्ति जिसके सहारे वह अपने अंगोंका अवसरके अनुसार उपयोग कर अपनी रक्षा तथा जीवनके लिए आवश्यक अन्य कार्य कर सकता था। कालांतरमें उसकी इसी शक्तिने उसे कृषिकर्मका ज्ञान कराया और वह समाजके रूपमें संघटित होकर शांतिमय जीवन व्यतीत करने लगा। इस प्रकार मानव-जातिके इतिहासमें नये युगका आरंभ हुआ और अब उसे अपने अंगोंको पूर्वरूपमें उपयोगमें लानेकी आवश्यकता नहीं रही।

किसी कार्यके संबंधमें कुछ सोचने या विचार करनेके समय कोई बाहरी क्रिया न होनेपर भी उस विचारसे संबद्ध अंगोंका प्रयत्न अंदर-ही-अंदर चलता रहता है जो इस बातका प्रमाण है कि विचार और क्रियाका संबंध प्राकृतिक है। प्रकृतिने अंगोंका संचालन करनेके विचारसे ही यह विशेष शक्ति प्रदान की थी, गूढ़ चिंतनके लिए नहीं; पर मनुष्य विचारशक्ति देनेका प्रकृतिका अभिप्राय न समझ सकने और अभ्यासद्वारा चाहे जिस शक्तिका विकास कर सकनेकी क्षमता (जो अन्य प्राणियोंमें नहीं है) होनेके कारण शरीरकी उपेक्षाकर केवल मानसिक शक्तिके विकासमें प्रवृत्त हुआ और अपने लिए तरह-तरहके सुख-साधनोंका आविष्कार और निर्माण करनेमें इसका उपयोग करने लगा। मनुष्यकी जीवन-धारा इसी दिशामें प्रवाहित होती रही जिसके परिणामस्वरूप क्रमशः शारीरिक श्रमपर बौद्धिक श्रमकी प्रधानता स्थापित होती गयी और आज तो स्थिति यहांतक पहुंच गयी है कि मनुष्य नगरके अपने आलीशान मकानके किसी कोनेमें बैठे-बैठे, बिना हाथ-पैर हिलाये, श्रमिकों और यंत्रोंका संचालन कर इतना धन अर्जन कर सकता है जितना वह शारीरिक श्रमसे सौ जन्मोंमें भी नहीं प्राप्त कर सकता। भौतिक सुख-सुविधाका साधन होनेके कारण समाजमें आज अर्थका ही बोलबाला है, इसलिए अर्थप्रद होनेकी वजहसे

प्रायः सबका झुकाव बौद्धिक कार्यकी ही ओर है। बुद्धिप्रधान युगमें प्रतिष्ठापूर्वक रहनेका साधन प्रस्तुत न कर सकनेवाले शारीरिक श्रमका सहारा कौन ले?

भौतिक सुख-साधनोंकी दृष्टिसे आजकी यह स्थिति भले ही वरदान समझी जाय, पर शारीरिक दृष्टिसे तो यह अभिशाप ही सिद्ध हो रही है। इसकी चकाचौंधमें मनुष्यकी दृष्टि जीवनकी इस एकांगिता और शरीरकी निष्क्रियताकी ओर नहीं जा रही है और अच्छी बौद्धिक शक्तिसे युक्त होते हुए भी वह नहीं समझ पा रहा है कि शरीरकी यह स्थिति उसे कहां ले जायगी। पर्वतपरसे गिरनेवाले झरने या निरंतर प्रवाहित रहनेवाली नदीका जल स्फटिककी तरह स्वच्छ बना रहता है, पर तालाब या गड्ढेका बंधा हुआ जल दुर्गन्ध और रोगोत्पादक कीड़े पैदा करने लगता है। मानवशरीर इस नियमसे परे नहीं है। जो अंग प्रयोगमें नहीं आयेंगे वे अंतमें बेकार हो जायेंगे और शरीरकी जीवन-धारणसंबंधी क्रियाओंमें सहायता तो क्या देंगे, उलटे मलका आश्रय-स्थान बनकर शरीरको रोगोंका क्षेत्र बनाने लगेंगे।

स्वास्थ्यका महत्त्व

जीवन विकट संग्राम है। आरंभसे ही तरह-तरहकी समस्याएं और कठिनाइयां हमारे सामने आने लगती हैं, पद-पदपर शत्रुओंका भी, जो हमारा अंत कर अपना अस्तित्व सुरक्षित बनानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं, सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों और शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिए बहुत अधिक क्षमता अपेक्षित है। छोटे-मोटे कार्योंको करते और किसी तरह जीवन आगे ढकेलते रहकर यह समझना कि हम पूर्णतः स्वस्थ हैं, अपनेको धोखा देना है। वास्तविक स्वास्थ्य और बलका अर्थ है अत्यधिक जीवशक्ति। जिस व्यक्तिमें यह शक्ति होगी उसमें उत्साह जोर मारता रहेगा और उसमें कार्य करनेकी बहुत अधिक क्षमता रहेगी, उसका मस्तिष्क पुष्ट और विचार निश्चयात्मक होंगे, व्यक्तित्व

आकर्षक होगा, वह नये-नये कार्योंकी उद्भावना कर उनमें पूरी सफलता प्राप्त करता रहेगा और कभी किसी कार्यमें हतोत्साह नहीं होगा। इस प्रकारके स्वास्थ्यके अभावमें इस जीवन-संग्राममें विजय पाना बिना आधारके भवन बनानेकी ही तरह असंभव होगा।

मानव-जीवनमें शारीरिक, मानसिक और भावात्मक—ये जो तीन प्रकारके कर्म होते हैं उनमें प्रधान शारीरिक कर्म ही है और वही शेष दोनों प्रकारके कर्मोंकी बुनियाद और स्वास्थ्यका, जो जीवनकी सबसे बड़ी पूंजी है और सभी क्षेत्रोंमें समान रूपसे उपयोगी होता है, मुख्य साधन है। इसके अभावमें सुख और सफलताकी आशा करना निरभ्र आकाशसे वर्षाकी आशा करनेके ही समान निरर्थक होगा। अध्ययन, चिंतन, नौकरी, कारबार या और कोई भी कार्य हो सबके लिए स्वास्थ्य अनिवार्य रूपसे आवश्यक है। स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा, शारीरिक शक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही संघर्षमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्त होनेकी क्षमता प्राप्त होगी और यही क्षमता जीवनका फल प्रदान करेगी, फिर चाहे पेशा या जीवनका उद्देश्य जो भी हो। मंत्री, वकील, अध्यापक, चिकित्सक—सबको शारीरिक स्वास्थ्यकी उतनी ही जरूरत पड़ती है जितनी गिट्टी कूटनेवालेको। अवश्य ही इन सबका कार्य एक-जैसा नहीं है, पर उनमें वह शक्ति तो होनी ही चाहिए जो आत्मविश्वास उत्पन्नकर विजयकी ओर अग्रसर करती है।

प्राप्तिका उपाय

किंतु यह स्वास्थ्य, यह शक्ति प्राकृतिक विधानकी उपेक्षा करके नहीं संपादित की जा सकती, इसके मुख्य साधन अंगोंकी गतिशीलता—सक्रियता—का ही सहारा लेना पड़ेगा। केवल मस्तिष्क सक्रिय रखने या अंग-विशेष प्रयोगमें लाते रहनेसे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होनेकी आशा नहीं की जा सकती। मस्तिष्कका वजन सिर्फ डेढ़ सेरके करीब होता है और अन्य कोई भी अंग अंग ही रहेगा, पूर्ण नहीं हो सकता। इससे तो

मस्तिष्क या अंगविशेषके ही कोषाणु पुष्ट और सबल हो सकेंगे, शेष कोषाणुओंपर इसका उतना प्रभाव नहीं होगा और रक्तका संचलन और शोधन भी उतना नहीं हो सकेगा जितना पूर्ण स्वास्थ्यके लिए अपेक्षित है। मलविसर्जनकी क्रिया भी समुचित रूपमें नहीं हो सकेगी। समुचित लाभ उठानेके लिए तो सारे शरीरकी, अंग-प्रत्यंगकी सक्रियता अनिवार्यतः आवश्यक होगी; पर आज हम जिस तथाकथित सभ्यताके वातावरणमें जीवन-यापन कर रहे हैं उसमें न तो आदिम मनुष्योंका जीवन अपनाया जा सकता है और न अधिक लोगोंके लिए ऐसा कोई कार्य ही हो सकता है जिसमें सारे शरीरका निरंतर प्रयोग होता रहे। ऐसी स्थितिमें हमारे लिए व्यायाम ही एक ऐसा साधन नजर आता है जिसके द्वारा उक्त प्राकृतिक विधानका पालन कर सरलतापूर्वक स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इस उपायसे हमारे शरीरका भी उसी तरह श्रम हो जायगा जिस तरह आदिम मनुष्योंका होता था—अंतर सिर्फ यह होगा कि उनका श्रम स्वाभाविक रूपमें, आप-ही-आप होता था और हमारा इच्छासे प्रेरित और यत्नज होगा।

व्यायामका प्रभाव

मनुष्य स्वभावतः स्वस्थ, बली और शक्तिशाली होना चाहता है, पर इस इच्छाके होते हुए भी अधिकांश लोग लापरवाह होते हैं और शरीरका ढीला-ढाला और निःशक्त होते जाना देखते रहते हैं। उन्हें शायद यह आशा रहती है कि शक्ति और स्वास्थ्य आकाशसे बरस पड़ेगा और इसके लिए कोई प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है, पर ऐसा कभी होता नहीं। बहुतसे आदमियोंके व्यायाम न करनेका कारण यह होता है कि आजके कृत्रिम वातावरण और ऐसे पेशोंकी वजहसे जिनके लिए शारीरिक श्रम आवश्यक नहीं होता, उनमें आरामतलबी आ जाती है और इस प्रकार शरीर आलस्यका आदी हो जाता है। सबसे बड़ी कठिनाई तो

यह होती है कि लोग शारीरिक श्रमसे जिस कदर दूर रहते हैं उतने ही वे व्यायामसे भागते हैं। कुछ लोग ऐसे जरूर होते हैं जो बौद्धिक कार्योंमें सचमुच इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें व्यायाम करनेके लिए जरा भी समय नहीं बचता, पर यह प्रवृत्ति ठीक नहीं कही जा सकती; क्योंकि व्यायामकी इस उपेक्षासे वे अंतमें लाभमें न रहकर घाटेमें ही रहेंगे। कारण यह है कि जिस जीवशक्तिपर बौद्धिक कार्योंके लिए उन्हें निर्भर रहना है वह दिनोंदिन घटती जायगी और इस शक्तिका ह्रास हो जानेपर न तो उनमें आत्मविश्वास रह जायगा और न तरह-तरहकी समस्याओं और बाधाओंका सामना करनेकी उनकी हिम्मत ही होगी।

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य

कुछ लोग तो ऐसे भी हैं कि जिनकी धारणा है कि व्यायाम करनेसे मस्तिष्क कुंठित हो जाता है, पर यह निरा भ्रम है; कुंठित तो उसी हालतमें हो सकता है जब उसकी बिलकुल उपेक्षा होती रहे—ठीक वैसे ही जैसे अंगोंका प्रयोग न होते रहनेपर वे बेकार हो जाते हैं। कुछ लोगोंका यह भी खयाल है कि शरीरको पुष्ट बनाये बिना भी मस्तिष्कका विकास किया जा सकता है, पर वे यह भूल जाते हैं कि जीवशक्ति ही प्रभावकर मानसिक और शारीरिक शक्तिका आधार है और मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओंके रूपमें वस्तुतः इसी जीवशक्तिकी अभिव्यक्ति होती है। एक ही रक्त मस्तिष्क तथा शरीरके अन्य अंगोंका पोषण करता है, सभी एक ही नाड़ी-संस्थानसे संबद्ध हैं और संचालित भी एक ही नाड़ीशक्तिसे होते हैं। यह जरूर है कि जीवनमें इनका क्षेत्र अलग-अलग देख पड़ता है, पर ये परस्पर अन्योन्याश्रय संबंधमें बंधे होते हैं और एकके लिए दूसरेका सहयोग अनिवार्य रूपमें आवश्यक होता है। अगर कोई मनुष्य किसी शारीरिक कार्यमें व्यस्त रहे या शरीर थकावटसे चूर हो तो उस समय उससे कोई मानसिक कार्य नहीं हो सकेगा, पर अगर वह शारीरिक श्रम या व्यायामकी उपेक्षा करता रहे तो भी उससे मानसिक कार्य उचित रूपमें

नहीं हो सकेगा और साथ ही मानसिक शक्तिका बहुत कुछ ह्रास भी हो जायगा क्योंकि पेशियों आदिका व्यायाम ही उन सारी क्रियाओंके समुचित रूपमें चलनेका कारण होता है जिनका सामूहिक परिणाम स्वास्थ्य है जिसपर मानसिक क्रियाका सुचारु रूपमें होना अवलंबित है। किसी तरह शरीरको ढोये जाना जीवनका वास्तविक रूप नहीं है। सच तो यह है कि स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीरमें ही पाया भी जा सकता है।

इस बाधक कारणोंके होते हुए जो थोड़ेसे लोग व्यायाम करते भी हैं उनमें अधिकांश लोग यह नहीं समझ पाते कि हम क्यों व्यायाम करते हैं, उसका शरीरपर कैसे प्रभाव पड़ता है या उससे स्वास्थ्यकी प्राप्ति कैसे होती है।

शरीरपर प्रभाव

शरीरके किसी अंगके बहुत दिनोंतक निष्क्रिय रहनेपर उसका चारों ओर घूमनेका क्षेत्र बहुत संकुचित हो जाता है और अवस्था अधिक होनेपर तो वह और भी कम हो जाता है, पर अगर नियमित रूपसे व्यायाम होता रहे तो संधियोंपरकी पेशियों और बंधनियोंका क्रियाक्षेत्र काफी विस्तृत रहता है और उनमें मुलायमियत और लोच बनी रहती है जिससे वे काफी घूम सकनेकी स्थितिमें रहती हैं। अंगोंके मुड़ते रहनेपर संधियोंपरकी बंधनियों आदिमें कभी तनाव आता, कभी उनपर जोर पड़ता और कभी उन्हें विश्राम मिलता रहता है। इन क्रियाओंके प्रभावसे संधियोंमें इकट्ठा हुआ मल वहांसे हटकर बाहर निकलनेके लिए मलमार्गमें पहुंच जाता है। व्यायाममें अंगोंकी विभिन्न प्रकारकी गतिके कारण पेशियां भी बारी-बारीसे फैलती और सिकुड़ती रहती हैं और मांसल भागके रूपमें परिवर्तन होता रहता है—वह कभी दबता, कभी खिंचता, कभी सिकुड़ता, कभी ऐंठता और कभी दूसरे भागपर दबाव डालता है जिससे आप-ही-आप उसकी मालिश हो जाया करती है। अगर कोई चुस्त कपड़ा पहनकर इस तरहकी हरकत की जाय तो आसानीसे पता चल जायगा कि पेशियोंकी

स्थितिमें इससे क्या परिवर्तन होता है। पेशियां भी एक तरहसे अस्थि-पंजरकी पोशाक ही हैं, पर इनमें विशेषता यह है कि ये आवश्यकतानुसार फैलती और सिकुड़ती भी हैं।

शरीरपर व्यायामका स्पष्ट प्रभाव बढ़ी हुई श्वसन-क्रियाके रूपमें देख पड़ता है। व्यायामके कारण अधिक मात्रामें बने हुए अंगाराम्लसे रक्तको मुक्त करनेका प्रकृतिका यह विशेष उपाय है। पेशियोंके सक्रिय होनेपर उनकी ओर रक्तका बहाव तीव्र हो जानेसे सारे शरीरका रक्तप्रवाह प्रभावित होता है जिससे रक्तवाहिनी नलिकाएं फैल जाती हैं, हृदय तेजीसे रक्त फेंकने लगता है और फुफ्फुस, त्वचा, यकृत आदि भी उद्दीप्त होकर अधिक कार्य करने लगते हैं। ओषजन अधिक मिलनेसे आंतोंकी क्रिया भी तीव्र हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि भूख तेज हो जाती और ग्रंथियोंसे पाचक रसोंका स्राव अधिक होने लगता है जिससे अच्छे आहारकी उपयोगिता तो बढ़ ही जाती है, बुरे आहारका प्रभाव भी नष्ट हो जाता है।

लसीकाका कार्य

व्यायामके संबंधमें महत्त्वकी एक बात और है जिसकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान जा पाता होगा। वह है लसीकाका कार्य। यह शरीरके सभी तंतुओंमें व्याप्त रहती है और कोषाणुओंको ठीक उसी तरह आवृत किये रहती है जिस तरह हम लोगोंको आकाशतत्त्व। रक्तका बहाव जहां समाप्त होता है उसी जगहसे इसका बहाव आरंभ होता है। रक्तसे बहुत पतला होनेके कारण यह रक्तकी सूक्ष्म केशिकाओंमें घुस जाती है और अपने जरिये कोषाणुओंके साथ रक्तका सम्पर्क स्थापित कर देती है। यही कोषाणुओंमें पोषण पहुंचाती और उनका मल ग्रहणकर शिराओंके जरिये ले जाती और उसे बाहर निकालनेके लिए हृदयके पास रक्तकी बड़ी नालियोंमें पहुंचा देती है। इस प्रकार कोषाणुओंके पोषण, नये कोषाणुओंके निर्माण आदिकी दृष्टिसे इसका तीव्रगतिसे प्रवाहित होते

रहना बहुत आवश्यक है। मेढकमें तो इसे पंपकर तंतुओंमें पहुंचानेके लिए अलग हृदय होता है, पर मानव-शरीरको इसका प्रवाह जारी रखनेके लिए पेशियोंके संकोच और प्रसारपर ही निर्भर रहना पड़ता है जो व्यायामसे आसानीसे हो जाता है।

व्यायामसे स्वास्थ्य

शरीरमें भीतरी और बाहरी सब मिलाकर चार सौसे ऊपर पेशियां हैं और इन दोनों प्रकारकी पेशियोंका आपसमें बहुत गहरा संबंध है। अंदरके अंगोंकी जीवनधारणसंबंधी सारी क्रियाएं बाहरी पेशियोंकी क्रियाओंसे ही प्रभावित होती हैं, इसलिए उनका उचित रूपमें सक्रिय रहना और दोनों प्रकारकी पेशियोंका संबंध ठीक रहना जीवनसंबंधी क्रियाओंके, जिनमें नये कोषाणुओंका निर्माण, कोषाणुओंकी क्रियासे उत्पन्न मलका निष्कासन और कोषाणुओंका नाड़ियोंसे उचित संबंध मुख्य हैं, ठीक तरहसे चलनेके लिए परमावश्यक है। स्वास्थ्य इन्हीं दोनोंके सम्मिलित शक्तिका परिणाम होता है और व्यायाम ही यह शक्ति बनाये रखकर स्वास्थ्यकी रक्षा कर सकता है।

उपर्युक्त प्रभावोंके ही कारण व्यायाम शारीरिक अक्षमता और रोगोंका निवारण करनेका प्राकृतिक उपाय माना गया है। अगर नियमित रूपमें बुद्धिमत्तापूर्वक व्यायाम चलाया जाता रहे तो वह स्वास्थ्य प्रदान करने और शारीरिक दोषोंको दूर करनेमें आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाता है। यही कारण है जिससे स्वास्थ्य-सुधारकी जो भी योजना बनायी जाती है उसमें व्यायामको प्रथम स्थान दिया जाता है। इससे शरीरमें स्वस्थ हो जानेके कारण कार्य करनेकी शक्ति बढ़ जाती है, मन प्रफुल्ल रहता है, मानसिक तथा भावात्मक क्रियाएं उचित रूपमें होती हैं, साहस बढ़ जाता है और जीवनसंबंधी दृष्टिकोण आशावादी हो जाता है। जहां अस्वस्थता सुंदरतम सूर्योदयको भी दृष्टिसे ओझल कर दिया करती है वहां स्वास्थ्य रूखे दिनमें भी सौन्दर्यके दर्शन कराने लगता है।

इसके विपरीत अगर व्यायाम न किया जाय तो पाचन-क्रिया ठीक तरहसे न हो सकेगी क्योंकि वह केवल रासायनिक क्रिया न होकर पेशीसंबंधी क्रिया भी है, अन्ननाली कमजोर पड़ जायगी जिससे उसकी कृमिवत् आकुंचन और प्रसरण-क्रिया शिथिल हो जायगी और मलका ठीक तरहसे विसर्जन नहीं हो सकेगा, अन्य मलमार्ग भी शिथिल हो जायंगे, ओपजनकी पर्याप्त मात्रामें प्राप्ति न होने और रक्त तथा लसीकाका प्रवाह मंद होनेसे कोषाणुओंमें मल एकत्र हो जायगा, शरीरकी रासायनिक क्रिया अस्त-व्यस्त हो जायगी, अजीर्ण और कोष्ठबद्धता बनी रहेगी, हृदय कमजोर हो जायगा और पेशियां ढीली और अशक्त हो जायंगी। सारांश यह कि जीवनधारणसंबंधी क्रियाएं उचित रूपमें न होनेके कारण शरीर तरह-तरहके रोगोंका शिकार होकर मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगेगा।

इन सब बातोंका विचार करते हुए मनुष्यके लिए यही श्रेयस्कर है कि वह व्यायामका आश्रय ग्रहण कर अपने शरीरकी रक्षा करे; क्योंकि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'।

स्वास्थ्य क्या है ?

स्वास्थ्यकी प्राप्ति और रक्षणमें व्यायाम कितना सहायक होता है यह स्पष्ट हो जानेपर हमारे लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि शरीरकी वह कौन-सी अवस्था है जिसे हम स्वास्थ्य कहते हैं और किन अंगोंका उससे मुख्य रूपमें संबंध है।

शरीरके सारे अंग कोषाणुओंके समुदायों अर्थात् तंतुओंसे बने हैं और अगर ये तंतु स्वस्थ बने रहें तो शरीरके सभी अंग स्वस्थ और सशक्त बने रहकर अपना-अपना काम सुचारु रूपसे करते रह सकते हैं। शरीर-विज्ञानके अनुसार तंतुओंके स्वास्थ्यके लिए तीन बातोंका होना

आवश्यक हैं––(१) पोषणकी समुचित प्राप्ति और निःस्रोत ग्रंथियोंके रसोंका स्राव, (२) आहारका परिपाक और मलका सम्यक् विसर्जन, और (३) नाड़ीसंस्थानकी साधारण सक्रियता।

पाचन-संस्थान

तंतुओंके पोषणके लिए प्रोटीड, वसा, कर्बोज, खनिज लवण, जल और ओषजन आवश्यक हैं। ओषजन तो मुख्यतः वायुसे श्वासद्वारा प्राप्त होता है, पर शेष तत्त्व भोजन और पेयसे प्राप्त होते हैं; किंतु भोजनसे इन तत्त्वोंके प्राप्त होनेका यह अर्थ नहीं है कि हम जो कुछ खाते-पीते हैं उसके सारे तत्त्वोंको शरीर पूरा-पूरा ग्रहण कर लेता है; वह केवल उतने अंशका ग्रहण करता है जितनेका वह परिपाक करनेमें समर्थ होता है, शेष मलके रूपमें बाहर निकल जाता है। इसलिए यथासंभव अधिक पोषण प्राप्त करनेके लिए पाचन-संस्थान––आमाशय, क्षुद्रांत्र, क्लोम, यकृत आदि––का स्वस्थ और कार्यक्षम होना आवश्यक है। ये सभी अंग उदर-खातमें अवस्थित हैं। श्वसन-क्रियासे महाप्राचीरा और उदरकी पेशियां ऊपर उठती और दबती रहती हैं जिससे इन अंगोंकी आप-ही-आप, प्राकृतिक रूपमें हौले-हौले मालिश होती रहती है; पर यह क्रिया भी तभी समुचित रूपमें हो सकती है जब उदरकी पेशियां सशक्त और नमनशील बनी रहें। अगर किसी कारणसे वे कमजोर पड़ जायं तो परिणाम यह होगा कि कब्ज, अजीर्ण आदि रोग प्रस्तुत होते रहेंगे। यही नहीं, अगर वे ढीली पड़ जायं तो स्थानभ्रष्ट होकर नीचेकी ओर लटक जायंगी और तरह-तरहके उपद्रवोंका कारण बन जायंगी।

रक्त-संस्थान

रक्त ही पोषक तत्त्वोंको तंतुओंमें पहुंचाया करता है, इसलिए रक्तका वहन करनेवाले अंगों अर्थात् धमनियों, केशिकाओं, शिराओं और विशेषकर हृदयका, जो इन सबमें प्रधान है, साधारण रूपमें कार्य करनेकी अवस्थामें

होना परमावश्यक है। इस संस्थानमें शिराएं सबसे कमजोर पड़ती हैं और उन्हें ही सारे शरीरसे मलसे भरा हुआ रक्त एकत्र कर शोधनके लिए हृदयके पास ले जाना पड़ता है। उनका यह कार्य गुरुत्वाकर्षण-शक्तिकी उलटी दिशामें होनेके कारण उन्हें बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है जिससे वे प्रायः कमजोर होकर शिथिल पड़ जाती हैं। इसलिए अगर उनका कार्य कुछ हलका कर उन्हें उचित रूपमें कार्य करने योग्य बनाये रखना है तो उनके इस कार्यमें ऊपरसे कुछ सहायता मिलनी चाहिए।

श्वास-संस्थान

ओपजन भी रक्तसे ही तंतुओंको प्राप्त होता है। अगर रक्तसंस्थान ठीक तरहसे अपना काम करता रहे तो तंतुओंको आसानीसे वह प्राप्त होता रहेगा, पर रक्तको वह पर्याप्त मात्रामें मिलना चाहिए। यह कार्य मुख्यतः फेफड़ोंका है, पर श्वसन-क्रियाका, जिससे ओषजनकी प्राप्ति होती है, ठीक तरहसे होना फेफड़ोंपर ही नहीं बल्कि स्वरनलिका और श्वाससंस्थानकी पेशियोंपर भी निर्भर हैं। अगर फेफड़े लचीले और उनके अंदरके वायुकोष सक्रिय हों तो वे स्वस्थ बने रहेंगे।

ग्रंथि-संस्थान

तंतुओंको इन पोषक तत्त्वोंके अतिरिक्त निःस्रोत ग्रंथियोंसे निकलने-वाले रसोंकी भी आवश्यकता होती है, इसलिए ग्रंथिसंस्थान---पीयूष-ग्रंथि, अवटुका, अधिवृक्क आदि---का भी स्वास्थ्य अभीष्ट है। स्रावमें कमी आनेका परिणाम स्वास्थ्यके लिए घातक होता है। इस प्रकार पाचकसंस्थान, श्वाससंस्थान, रक्तसंस्थान और ग्रंथिसंस्थानके स्वस्थ रहकर साधारण रूपमें कार्य करते रहनेपर तंतुओंके पोषणके लिए आवश्यक तत्त्वोंकी प्राप्ति होती रहेगी।

मलका विसर्जन

तंतुओंके स्वास्थ्यके लिए दूसरी आवश्यकता मलका सम्यक् विसर्जन है। श्रम और आहारसे कार्बन-द्वयोषिद, मूत्रिकाम्ल, पित्त, मूत्र, विष्ठा

आदि मल शरीरमें निरंतर बनते और आंत, फेफड़ों, मूत्रमार्ग, त्वचा आदिके जरिये बाहर निकलते रहते हैं। विषाक्त होनेके कारण इनका शरीरसे तत्काल बाहर निकल जाना आवश्यक होता है; क्योंकि अगर ये शरीरमें रुके रह जायं तो आत्मविषमयताकी अवस्था प्रस्तुत हो जायगी जो रोगका मूल कारण है। इसलिए इन मलमार्गोंका स्वस्थ रहकर नियमित रूपमें काम करते रहना स्वास्थ्यके लिए परमावश्यक है।

नाड़ी-संस्थान

तीसरी आवश्यकता नाड़ीसंस्थानकी साधारण सक्रियता है। यही उपर्युक्त सभी संस्थानोंमें परस्पर संबंध बनाये रखता और सबका नियंत्रण करता है। मस्तिष्क इस संस्थानका सबसे महत्त्वपूर्ण केंद्र है और उसके बाद सुषुम्नाका स्थान है जो पृष्ठवंशमें अवस्थित है। इन्हीं दोनों केंद्रोंसे शाखा-प्रशाखाएं निकलकर सारे शरीरमें इस प्रकार फैली हुई हैं कि सूईकी नोकके बराबर भी कहीं कोई स्थान खाली नहीं है। प्रत्येक तंतुका एक स्वतंत्र नाड़ीसे संबंध है और उसीके द्वारा उस तंतुका संचालन होता है। अगर किसी तरह यह संबंध विच्छिन्न हो जाय तो वह तंतु बिलकुल निश्चेष्ट हो जायगा। इन्हीं नाड़ियोंके संकेतपर शरीरके सभी अंग संचालित होते हैं, इसलिए इनके स्वास्थ्यपर ध्यान देना सर्वाधिक आवश्यक है। वर्तमान युगमें तो यह आवश्यकता और भी बढ़ गयी है क्योंकि आधुनिक सभ्यताने हमारा जीवन कुछ ऐसे सांचेमें ढाल दिया है जिसमें हमेशा भाग-दौड़ लगी रहती है और हमारे अधिकांश कार्य पेशियोंका सहारा छोड़कर यंत्रोंपर आश्रित हो गये हैं जिससे हमको हमेशा चौकन्ना रहना पड़ता है।

अगर ये सभी संस्थान अपनी प्राकृतिक अवस्थामें बने रहें और परस्पर संबंध बनाये रखकर सहयोगपूर्वक कार्य करते रहें तो शरीरकी सभी क्रियाओंमें सामंजस्य बना रहेगा और क्षय तथा निर्माणकी क्रियामें

जो इस जीवनके लिए अनिवार्य है, कोई त्रुटि नहीं आने पायेगी। शरीरकी इसी सामंजस्यपूर्ण अवस्थाको 'स्वास्थ्य' कहते हैं।

व्यायाम कैसा हो ?

स्वास्थ्यके वास्तविक स्वरूप और व्यायामके साथ उसके संबंधका उचित ज्ञान न होनेके कारण लोगोंका व्यायामसंबंधी दृष्टिकोण प्रायः भ्रामक हुआ करता है जिससे व्यायाम उनके लिए उतना लाभदायक नहीं होता जितना होनेकी वे आशा करते हैं। शरीरके विभिन्न संस्थानोंका अपने साधारण या प्राकृतिक रूपमें कार्य करना ही स्वास्थ्यका मुख्य आधार होनेके कारण हमें व्यायामके चुनावमें इन सभी संस्थानोंका व्यायाम अपनी दृष्टिमें रखना होगा। इसके अतिरिक्त कुछ और भी बातें हैं जिनपर ध्यान देना आवश्यक है। व्यायाम भी एक तरहका व्यवसाय ही है। हम उसमें जो पूंजी लगाते हैं, शरीरकी शक्तिका जितना व्यय करते हैं उससे अधिक प्राप्त होनेका निश्चय हो तभी वह लाभदायक कहा जा सकेगा। इसलिए व्यायाम ऐसा होना चाहिए जिसमें कम-से-कम समय और कम-से-कम शक्तिके व्ययसे उक्त संस्थानों और उनके साथ ही प्रेरक संस्थानका भी अच्छा व्यायाम हो जाय, थकान न आने पाये और दिनभर स्फूर्ति तथा उत्साह बना रहे, शक्ति अधिक प्राप्त हो और कुछ विशेष लोग ही नहीं सभी श्रेणियोंके लोग उससे लाभ उठा सकें। एक बातपर और ध्यान देना आवश्यक है। वह यह कि पेशियोंका उचित व्यायाम तो हो, पर वह इतना न हो कि उनका आकार फैलकर श्वासद्वारा प्राप्त होनेवाले ओपजनका आयतन कम कर दे।

डंड-बैठक, मुग्दर, मालखंभ, कुश्ती और कई तरहके देशी खेल बहुत पुराने समयसे चले आ रहे हैं जो सब-के-सब व्यायामकी श्रेणीमें रखे जाते हैं। ऋषियोंद्वारा आविष्कृत आसन भी योगका अंग होते हुए उद्देश्य शरीर-संस्कार होनेके कारण व्यायाम ही माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त

फुटबॉल, क्रिकेट आदि विदेशी खेल, जिमनास्टिक और प्रोफेसर राम-मूर्ति, प्रोफेसर माणिकराव, सैंडो, मूलर, मैकफैडन आदिकी देशी-विदेशी व्यायाम-पद्धतियां हैं जो अपेक्षाकृत बहुत नयी हैं। इन सबके गुण-दोषोंका विचारकर यह देखना आवश्यक है कि वह कौन-सा व्यायाम या व्यायाम-पद्धति है जो उपर्युक्त उद्देश्योंकी सबसे अधिक पूर्ति करनेमें समर्थ हो सकती है।

देशी-विदेशी व्यायाम

डंड-बैठक आदि देशी व्यायामोंसे पेशियां तगड़ी और शरीर सुडौल हो जाता है, पर उनसे नसोंपर बहुत अधिक जोर पड़ता है और एक ही तरहकी गति बार-बार होनेके कारण रक्त बहुत आता है जिससे मज्जातंतु फट जाते हैं और शक्तिमें वृद्धि होनेपर भी स्वास्थ्यकी प्राप्ति नहीं होती। व्यायाम छोड़ देनेपर तो शरीर स्थूल और शिथिल भी हो जाता है। अगर व्यायाम करनेके तरीकेमें कोई दोष हो तो हजारों बार एक ही रूपमें रोज होते रहनेके कारण उस दोषकी बार-बार आवृत्ति होती रहेगी जिससे शरीरको बहुत अधिक क्षति पहुंचनेकी संभावना रहेगी। कुछके पैरोंपर तो इतना जोर पड़ता है कि वे धनुषकी तरह टेढ़े हो जाते हैं। इन व्यायामोंके अभ्यासियोंमें एक बड़ा दोष यह होता है कि वे व्यायामका अभिप्राय जरा भी नहीं समझते और यह भी नहीं विचार करते कि किससे कैसा व्यायाम कराना चाहिए। इन व्यायामोंसे थकान भी इतनी आती है कि सारा बदन चूर हो जाता है और उस थकानको दूर करनेके लिए बहुत अधिक समयतक विश्राम करना लाजिमी हो जाता है।

कुश्तीसे शरीरकी ताकत खूब बढ़ती है, पर वह स्वास्थ्य बनाये रखनेमें सहायक नहीं होती। बल और स्वास्थ्य दो भिन्न चीजें हैं; यह कोई जरूरी नहीं कि बलवान् व्यक्ति स्वस्थ ही हो। पहलवान प्रायः रोगोंके शिकार होते रहते हैं और दीर्घायु भी नहीं होते। कुश्तीमें हृदयपर अधिक जोर पड़नेसे वह बहुत कमजोर हो जाता है जिससे अकाल-मृत्यु भी हो

जाया करती है। नयी अवस्थामें ही हृदयकी गति बंद हो जानेसे रुस्तमेहिंद हमीदाकी हुई मृत्यु इसका ताजा उदाहरण है।

विभिन्न प्रकारके खेलोंसे शरीरका श्रम भले ही हो जाय, पर उनका मुख्य उद्देश्य शरीर-संस्कार न होकर खेलकी कलामें विशेषता और उसके द्वारा प्रतियोगितामें विजय प्राप्त करना होता है, इसलिए उन्हें शरीरका संस्कार करनेवाले व्यायामोंकी श्रेणीमें रखना युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता। जिमनास्टिकमें कुछ व्यायाम तो होता है, पर उसका संबंध ऊपरके ही कुछ विशेष अंगोंसे होता है और वह शरीरके सभी संस्थानोंको लाभान्वित नहीं कर सकता।

विदेशी व्यायामोंका मुख्य उद्देश्य पेशियोंका संवर्धन और अंग-प्रदर्शन होता है और इसके लिए जो व्यायाम किये जाते हैं उनमें मुख्यतः पेशियोंका संकुचन होता है जिसका परिणाम यह होता है कि वहां रक्त बहुत अधिक पहुंचकर धमनियों और केशिकाओंको बहुत फैला देता है और पेशियां स्थूल होकर अपना लचीलापन खो देती हैं।

आसनोंकी विशेषताएं

व्यायामका अभिप्राय, जैसा कि इस शब्दके अर्थसे स्पष्ट है, अंगोंमें विशेष प्रकारसे तनाव लाना है, संकोच नहीं। शरीरके एक ही स्थितिमें देरतक रहनेपर रक्त एकत्र हो जाता है जिसका अपसारण करनेके लिए मनुष्यों और जानवरोंमें भी अंगड़ाई आदिके द्वारा जकड़े हुए अंगमें तनाव लानेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। आसनोंके आविष्कारमें मुख्यतः इसी सिद्धांतका आधार होनेके कारण वे पूर्णतः प्राकृतिक और वैज्ञानिक हैं और उपर्युक्त दोषोंसे सर्वथा मुक्त हैं। ऋषियोंने आसनोंका रूप निश्चित करते समय स्वास्थ्यसंबंधी सभी संस्थानों और अंगोंके व्यायामपर समुचित ध्यान दिया है, इसीसे आसनोंके द्वारा शरीरके सभी भागोंका अल्प कालमें ही अच्छा व्यायाम हो जाता है।

यह सत्य है कि किसी-किसी आसनमें अंगविशेषका संकोच करना

पड़ता है और रक्तभारकी वृद्धि भी होती है, पर सुखपूर्वक बहुत देरतक स्थिर रहना आवश्यक होनेके कारण उस अंगको विशेष प्रकारसे सहारा देनेका उपाय भी रखा गया है जिससे उसपर अधिक जोर नहीं पड़ने पाता और गुरुत्वाकर्षणके कारण रक्तभारमें जो थोड़ी-सी वृद्धि हुई रहती है वह दो-तीन मिनटोंमें ही कम होने लगती है और शीघ्र ही साधारण अवस्था आ जाती है। आसनोंसे थकान भी नहीं आने पाती क्योंकि प्रायः एक अंगका व्यायाम होते समय अन्य अंगोंको विश्राम मिलता रहता है और इस प्रकार व्यायाम और शिथिलन साथ-साथ चलनेसे श्रम और विश्रामका संतुलन बना रहता है। श्वसन-क्रिया भी अधिक तेज नहीं होने पाती और न तो पेशियोंपर अधिक जोर पड़ता है और न शक्तिका अधिक व्यय होता है। शरीरमें नाड़ी-संस्थानकी सर्वाधिक प्रधानता होनेके कारण उसके केंद्रस्थानों—मस्तिष्क और पृष्ठवंश—के व्यायामपर तो आसनोंमें विशेष ध्यान रखा गया है और उनका पहला प्रभाव इन्हीं दोनों अंगोंपर होताहै।

शरीरमें, विशेषकर अवस्था अधिक होनेपर संधियोंमें मल एकत्र होता रहता है जो विषमयता और अंततः रोगकी उत्पत्तिका कारण होता है। आसनोंमें अंगोंके तनावकी विशेषता होनेसे तनाववाले अंगका रक्त हटकर आसपासके अंगोंमें चला जाता और पूर्व स्थिति ग्रहण करनेपर उस रिक्त स्थानको भरनेके लिए तेजीसे दौड़ता है जिससे शरीरमें रक्ताभि-सरणकी क्रिया तीव्र हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप संधियोंमें एकत्र सारा मल घुलकर रक्तके साथ मलमार्गके पास पहुंच जाता है। इससे रोग उत्पन्न होनेकी तो संभावना ही नहीं रहती, अगर शरीरमें पहलेसे कोई रोग हो तो वह भी रक्त शुद्ध हो जानेके कारण चला जाता है। आसनाभ्यासीको कामवेग भी नहीं सताता, तमोगुणकी क्रियासे उत्पन्न शरीरका भारीपन दूर हो जाता है, बुद्धि निर्मल और सात्त्विक हो जाती है और शरीरमें ओज आ जाता है।

आसनोंके इसी वैज्ञानिक आधार और लाभोंसे प्रभावित होकर पाश्चात्त्य देशोंके व्यायामप्रेमी भी बड़े चावके साथ उनका अभ्यास करने लगे हैं और जिन लोगोंने अपनी पद्धतियां चलायी हैं वे भी इनमें निहित सिद्धांतोंका अपनी पद्धतिमें समावेशकर आवश्यक सुधार करने लगे हैं। अपने देशमें जो नयी व्यायामपद्धतियां चली हैं उनके प्रवर्त्तक तो अपनी पद्धतिकी उत्कृष्टता सिद्ध करनेके लिए आसनोंको ही उसका मूलाधार बतलाते हैं।

ऊपरके विवेचनसे यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि ऋषियोंद्वारा आविष्कृत आसन-व्यायाम ही शरीर-संस्कारकी दृष्टिसे आदर्श व्यायाम-पद्धति है और अन्य प्रचलित पद्धतियां उसकी छाया भी नहीं छू सकतीं।

मानसिक अवस्था

यौगिक क्रियाओंका लक्ष्य चित्तवृत्तिका निरोध है और इस लक्ष्यतक पहुंचनेके लिए महर्षियोंने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ मंजिलें कायम की हैं। आसन, जो ऊपर सर्वश्रेष्ठ व्यायाम-पद्धतिके रूपमें प्रतिपादित किया गया है, इस क्रममें तीसरी मंजिल है, पहली दो मंजिलें यम और नियम हैं। कहनेका अभिप्राय यह कि तीसरी मंजिल तै करनेके लिए पहली दोनों मंजिलोंको पार कर लेना आवश्यक है नहीं तो तीसरी मंजिल तै करना, आसन-व्यायाम-से जिन लाभोंके होनेकी ओर पहले संकेत किया गया है उन्हें यथोचित रूपमें प्राप्त करना, संभव न होगा।

मन और शरीर

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मानसिक अवस्था पायी जा सकती है और इस स्वास्थ्यका मुख्य साधन नाड़ी-संस्थान है जो स्वास्थ्यके रक्षणमें मुख्य रूपसे कार्य करनेवाली निःस्रोत ग्रंथियोंका ही नहीं, शरीरके अन्य सारे अंगोंका भी शासन-नियंत्रण करता है। इसी

विचारसे आसन-व्यायाममें नाड़ी-संस्थान और ग्रंथिसंस्थानके व्यायाम और स्वास्थ्यपर अन्य संस्थानोंकी अपेक्षा अधिक ध्यान दिया गया है, पर ये दोनों संस्थान स्वस्थावस्थामें होनेपर भी भावोंसे आक्रांत और प्रभावित होकर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं जिससे स्वास्थ्यमें खलल पहुंचनेकी स्थिति प्रस्तुत हो जाती है। जिस प्रकार शरीरके क्लांत या कष्टग्रस्त होनेपर मानसिक क्रिया उचित रूपमें नहीं हो पाती उसी तरह. भावावेशकी अवस्थामें शारीरिक क्रियाएं भी शिथिल या विश्रृंखल हो जाती हैं। इस प्रकार शरीरका मनपर और मनका शरीरपर प्रभाव पड़ता रहता है।

यदि भावका आवेग बहुत प्रबल और उग्र हो तो उसका प्रभाव घातकतक हो जाता है। अचानक बहुत बड़ी संपत्ति मिल जानेकी बेहद खुशीमें कइयोंकी मृत्यु हो जानेकी बात सुनी गयी है; अधिक शोकके आवेगका परिणाम भी ऐसा ही हुआ करता है; बलवान्-से-बलवान् व्यक्ति भी भयसे अभिभूत हो जानेपर बिलकुल निश्चेष्ट हो जाता है और उससे कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता; क्रोधमें मनुष्य आपेसे बाहर हो जाता है और शरीरपर उसका जरा भी नियंत्रण नहीं रह जाता; पुंस्त्व-पूर्ण पुरुषमें भी मानसिक निर्बलताके कारण क्लीबता आ जाती है; चिंता हट्टे-कट्टे शरीरको भी भीतर-ही-भीतर चालकर छलनी बना देती है और अधिक परेशानीकी हालतमें सिरके सारे बाल घंटोंमें ही सफेद हो जाते हैं। भावोंके कारण कोष्ठबद्धता, अग्निमांद्य तथा अन्य रोग हो जानेके उदाहरण तो प्रायः देखे जाते हैं।

यही नहीं, अगर मनोभाव दृढ़ हों तो शरीरको चाहे भीषण-से-भीषण कष्ट क्यों न पहुंच रहा हो, उसे उस कष्टका जरा भी भान नहीं होता। बालक हकीकत रायके शरीरकी बोटी-बोटी कर दी गयी, पर आखिरी दमतक उसके मनमें जरा भी निर्बलता नहीं आयी; मातृभूमिकी सेवामें मर मिटनेके लिए तैयार क्रान्तिकारी अधिकारिवर्गद्वारा दी जानेवाली कठिन-से-कठिन यातनाओंकी जरा भी परवा नहीं करते। इन उदा-

हरणोंसे हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि शरीरका मनपर जितना प्रभाव पड़ता है उससे अधिक और गहरा प्रभाव मनका शरीरपर पड़ता है और शारीरिक क्रियाएं इन्हीं भावोंका अनुसरण करती हैं।

भावोंके दो रूप

प्रेम, क्रोध, लोभ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष भय, शोक, करुणा, नैराश्य, आशा, उत्साह आदि ऐसे कई भाव हैं जो अवसर-विशेषके अनुसार तीव्र या मंद रूपमें प्रस्तुत होकर नाड़ी-संस्थानके जरिये शरीरको प्रभावित किया करते हैं। प्रभावके विचारसे ये सारे भाव दो वर्गोंमें रखे जा सकते हैं। क्रोध, घृणा, द्वेष, भय आदि तो मानव-हृदयका संकोचकर, बाह्य-जगत्से विकर्षणकी प्रवृत्ति लाकर उसे ज्वालामुखीके रूपमें परिणत कर देते हैं, पर दूसरे वर्गके भाव--दया, प्रेम, आशा, श्रद्धा आदि--हृदयका प्रसारकर उसमें शांतिका स्रोत प्रवाहित कर देते हैं और अन्य व्यक्तियोंके साथ मनुष्यका तादात्म्य-संबंध स्थापित कर उसकी आत्माका क्षेत्र विस्तृत कर देते हैं--'महात्मा' बना देते हैं। स्वास्थ्यपर भी इन भावोंका तदनुरूप ही प्रभाव होता है।

आसनव्यायामसे स्वास्थ्य प्राप्त होनेकी बात तो कही गयी है, पर शरीरपर पड़नेवाले भावोंके अनिष्टकर प्रभावको जानते-समझते हुए केवल आसनोंसे उक्त उद्देश्यकी पूर्ति होनेकी आशा करना अपनेको भ्रममें रखना होगा। अगर हमारे अंदर कामवासनाकी उत्ताल तरंगें उठती रहीं तो पतवारका काम देनेवाले सर्वांगासनसे नावकी रक्षा कबतक की जा सकेगी? अगर चिंताके कीटाणु मस्तिष्कके कोमल तंतुओंको चट करते रहें तो क्या हमें शीर्षासनसे कभी शांतिकी प्राप्ति हो सकेगी? अगर द्वेषकी अग्नि हृदयमें बराबर धधकती रही तो क्या कोई भी आसन उसे शांत करनेमें समर्थ हो सकेगा? आसनोंसे स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है और निश्चित रूपमें होती है, पर इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए भावोंके अनिष्टकर प्रभावका निवारण होना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह होता है कि भावोंके इस प्रकारके प्रभावका निवारण कैसे हो ? कुछ लोग ऐसे भावोंके त्याग या उन्मूलनकी बात सोच सकते हैं, पर देखना यह है कि क्या मनुष्यके लिए ऐसा कर सकना संभव है ?

क्रोध, द्वेष आदि आसुरी वृत्तियां हैं और प्रेम, दया आदि देववृत्तियां। मनुष्यमें दोनों प्रकारकी वृत्तियां नैसर्गिक या सहज रूपमें पायी जाती हैं, इसलिए मनुष्य न तो निरा असुर है और न देव ही, वह दोनोंका समाहार है, दोनोंको जोड़नेवाली बीचकी कड़ी है। वह चाहे तो नीचे उतरकर असुरोंकी श्रेणीमें पहुंच जा सकता है और चाहे तो ऊपर उठकर देवत्व भी प्राप्त कर सकता है, पर सहज होनेके कारण वह इन वृत्तियोंमेंसे किसीका उन्मूलन नहीं कर सकता। अगर उसे ऊपर उठाना अभीष्ट है तो उसे देववृत्तियोंको विकसितकर आसुरी वृत्तियोंको इस रूपमें रखना पड़ेगा जिसमें वे उसके उद्देश्यकी पूर्तिमें भरसक साधक बनें और अगर साधक न बन सकें तो बाधक भी न बनें।

यह तभी हो सकता है जब मनुष्य कंठमें कालकूट और ललाटपर सुधाकर धारण करनेवाले योगीश्वर शिवका आदर्श अपनाकर इन परस्पर-विरोधी वृत्तियोंमें सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न और साथ ही आसुरी वृत्तियोंका उन्नयन करे जिसमें वे शोधित विषकी तरह शरीरके लिए हानिकारक न रहकर औषधके रूपमें उसके लिए लाभदायक हो जायं। ईश्वरने हमें ऐसी कोई चीज नहीं दी है जो हमारे लिए अनिष्टकर हो। अगर हम किसी चीजका उचित उपयोग न कर उससे लाभके बदले हानि उठाते हैं तो यह हमारा दोष है। पशुओंसे उद्यानकी रक्षा करनेके लिए कंटीले पौधोंका बाड़ा आवश्यक होता है और यही उन कंटीले पौधोंका उपयोग है, पर हमें यह भी देखना पड़ता है कि वे अपने ही स्थानतक सीमित रहें, सर्वत्र फैलकर उद्यानका ही अंत न कर दें। आसुरी वृत्तियोंका भी इसी प्रकार उपयोग होना चाहिए, पर यह अवस्था तभी लायी जा सकती है जब मानस-प्रदेशमें 'सुराज'की स्थापना की जाय जिसमें सुरोंका प्रयत्न

ध्वंसात्मक न होकर रक्षात्मक और रचनात्मक हो जाता है। यम और नियमका अभ्यास इसी सुराजकी स्थापनाका उपाय है। इसीलिए महर्षियोंने यम और नियमको क्रमशः प्रथम और द्वितीय और आसनको तृतीय स्थान दिया है।

यम और नियम

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे निरंतर अन्य लोगोंके संपर्कमें आते रहकर तरह-तरहका व्यवहार करना पड़ता है। उपर्युक्त दोनों प्रकारके भाव उसके हृदयमें निष्क्रिय पड़े रहते हैं, पर अन्य लोगोंका उसके प्रति व्यवहार या समाजमें घटित होनेवाली घटनाएं इन भावोंको उद्‌बुद्ध और उत्तेजित कर देती हैं और वे भाव मनुष्यको प्रभावित कर उससे उक्त व्यवहार या परिस्थितियोंका प्रतिकार कराने लगते हैं। इसलिए व्यवहार-जगत्‌में ही आसुरी वृत्तियोंके परिसीमन या उन्नयन और देववृत्तियोंके विकासका अभ्यास उचित रूपमें हो सकता है; व्यवहार-जगत्‌से दूर हटकर, किसी निर्जन स्थानमें रहकर अभ्यासका प्रयत्न करना विना पानीमें उतरे रेतमें हाथ-पैर मारकर तैरनेका अभ्यास करने-जैसा ही निरर्थक होगा। अगर कोई व्यवहार-जगत्‌से दूर हटकर इस प्रकारका अभ्यास करे तो वह जीवनपर्यंत कच्चे घड़ेके ही रूपमें रहेगा जो पानी पड़नेपर फौरन गल जाता है।

इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त करनेका मार्ग सुगम वनानेके लिए ही महर्षियोंने आचरणसंवंधी दस सूत्र वनाये हैं जो यम और नियम नामक दो वर्गोंमें विभक्त हैं। अहिंसा (दूसरोंको किसी प्रकारका कष्ट न देना), सत्य (झूठ वोलकर दूसरोंकी हानि न करना), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (काम-वासनाका नियंत्रण) और अपरिग्रह (अग्रहण—दानादि न लेना)—ये पांच यम और शौच (पवित्रता), संतोष (जो मिले उसीसे तुष्ट रहना), तप (कष्टसहनका अभ्यास), स्वाध्याय (ज्ञानार्जन) और प्रणिधान (ईश्वरार्पण)—ये पांच नियम हैं। यमका उद्देश्य आत्म-

नियंत्रण है और नियमका उद्देश्य आत्मोन्नति; पहलेका क्षेत्र व्यवहार-जगत् है, पर दूसरेका क्षेत्र अभ्यासार्थीतक ही सीमित है। ऊपर-ऊपर तो ये दोनों एक-दूसरेसे भिन्न जान पड़ते हैं, पर दरअसल ये क्रमशः एक-एक सिक्केके दो-दो पहलू हैं—एक निषेधमूलक है और दूसरा विधि-मूलक। इन सूत्रोंके द्वारा मनुष्यका जीवन ऐसे सांचेमें ढालनेका प्रयत्न किया गया है जिसमें देववृत्तियोंका विकास और आसुरी वृत्तियोंका उन्नयन और परिसीमन आप-ही-आप होता चले। इस प्रकारके जीवनमें आसुरी वृत्तियोंको उत्तेजित होकर मनुष्यको अभिभूत करनेका अवसर न मिलनेके कारण उनका जोर दिनोंदिन कम पड़ता जायगा और तब मनुष्य उनके प्रभावमें न आकर उनका यथोचित प्रयोग कर सकनेकी स्थितिमें हो जायगा। मनुष्यकी मानसिक अवस्था ऐसी ही होनेपर आसनोंसे पूरा-पूरा लाभ होनेकी आशा की जा सकती है।

इस अवस्थाकी प्राप्ति, जिसमें मनुष्य राग-द्वेषसे कभी विचलित न हो, सुख-दुःखमें कोई अंतर न माने, अगर असंभव नहीं तो महाकठिन अवश्य है। "बिसमउ हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर।"—ऐसे राम कितने हो सकते हैं? पर इसका अर्थ यह भी नहीं कि जबतक मानसिक अवस्था ऐसी न हो तबतक आसन-व्यायाम प्रारंभ ही न किया जाय। यम-नियमके नाम और रूपसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आचार-व्यवहारमें संयम बरतनेका ध्यान रखनेपर मनुष्य आप-ही-आप इस दिशामें कदम बढ़ाने लगता है और इनका एक अंग अन्य अंगोंसे इस प्रकार संबद्ध है कि एकका अभ्यास करनेपर शेष अंगोंका भी अभ्यास आनुषंगिक रूपमें होने लगता है, इसलिए उचित यही है कि आसन आरंभ करनेके साथ ही दृढ़ संकल्पके साथ इनके अभ्यासका भी प्रयत्न चलता रहे। अन्य व्यायाम-पद्धतियोंमें इस पक्षका सर्वथा अभाव होनेसे यह न समझ लेना चाहिए कि इनके अभ्यासकी ओर ध्यान दिये बिना ही उन व्यायामोंसे स्वास्थ्यकी प्राप्ति या सुरक्षा हो जाती है। मन और शरीरका सापेक्ष संबंध वैज्ञानिक

सत्य है, यह अन्यथा नहीं हो सकता, इसलिए दोनोंका संस्कारके कार्यमें सहयोगपूर्वक आगे बढ़ना ही उचित एवं वांछनीय है।

आहार कैसा हो ?

हम लोग प्रायः कहा करते हैं कि मनुष्य मिट्टीका पुतला है और अन्तमें मिट्टीमें ही मिल जाता है। हमारे इस कथनका अभिप्राय साधारणतः मानव-शरीरकी क्षणभंगुरता और उसकी महत्त्वहीनताका द्योतन होता है, पर यह कथन वैज्ञानिक दृष्टिसे भी अक्षरशः सत्य है। हम जो कुछ खाते-पीते हैं वही हम होते हैं, उससे जरा भी भिन्न नहीं होते। मनुष्य ही नहीं, इस धरातलपर जितने भी जीव हैं सबके संबंधमें यही बात सत्य है। वृक्ष, पशु, पक्षी——सभी किसी-न-किसी रूपमें आहार ग्रहण करते हैं, इसके अभावमें किसी भी प्राणीका अस्तित्व कायम नहीं रह सकता। वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे अब यह भी स्पष्ट हो गया है कि सारे जीवोंकी रचना न्यूनाधिक रूपमें समान तत्त्वोंसे ही हुई है और अधिकांश तत्त्व आहारके रूपमें पृथ्वीसे ही प्राप्त होते हैं। मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंके आहारमें अन्तर यह है कि जहां अन्य प्राणियोंका आहार आरंभिक कालसे अपने प्राकृतिक रूपमें ही चला आ रहा है वहां मनुष्य बौद्धिक प्राणी होनेके कारण उनका रूप प्राकृतिक न रहने देकर तरह-तरहके पदार्थोंके संयोग और पाकक्रियाद्वारा परिवर्तित या विकृत कर दिया करता है जिससे वह सदोष या निष्प्राण होकर स्वास्थ्यके लिए हानिकारक हो जाता है। यों तो आहारसंबंधी वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका ज्ञान और उनका पालन सबके लिए उचित है, पर आसनाभ्यासीके लिए, जिसका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्यकी प्राप्ति और उसका रक्षण ही है, इन सिद्धांतोंके अनुसार आचरण करना परमावश्यक है।

शरीरके तत्त्व

मानव-शरीरका रासायनिक विश्लेषण करनेपर उसमें ओषजन, कार्बन,

हाइड्रोजन, कैलसियम, फास्फोरस, क्लोरिन, नाइट्रोजन, मैगनीसियम, गंधक, फ्लोरिन, सिलिकन, पोटैसियम, लोहा, सोडियम, आयडिन और मंगानीज---ये सोलह तत्त्व पाये जाते हैं। अगर किसी स्वस्थ मनुष्यका वजन १५३ पौंड हो तो उसमें ये तत्त्व इस अनुपातमें पाए जायंगे---ओषजन ७५, कार्बन ५०, हाइड्रोजन १५, कैलसियम ४, फास्फोरस ३, क्लोरिन २, नाइट्रोजन २ और शेष २ पौंडमें अन्य ९ तत्त्व। इन तत्त्वोंका यह अनुपात बराबर एक-सा बना रहना चाहिए, इसमें अन्तर आनेपर स्वास्थ्यमें भी अन्तर आनेकी संभावना रहेगी। धरतीसे प्राप्त होनेवाले तत्त्वोंको मनुष्य उससे सीधे नहीं ग्रहण करता और अगर मूलरूपमें ग्रहण करे तो वह उन्हें आत्मसात् कर भी नहीं सकता। मनुष्य उन्हें जान्तव या कार्बनिक (ऑर्गैनिक) रूपमें ही अर्थात् उस रूपमें जिसमें वनस्पतियों-से या वनस्पतियोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले प्राणियोंसे प्राप्त होते हैं, ग्रहण कर आत्मसात् कर सकता है। पौधे इन तत्त्वोंको पृथ्वीसे ग्रहण करते और तरह-तरहके यौगिकोंमें परिणतकर मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंके उपयोगके योग्य बना देते हैं। इन पौधोंमें भी विशेषता यह है कि सभी पौधे एक ही प्रकारके यौगिक नहीं प्रस्तुत करते, विभिन्न प्रकारके पौधोंमें विभिन्न प्रकारके यौगिकोंकी प्रधानता रहती है जिससे उपर्युक्त सभी तत्त्वोंकी प्राप्तिके लिए विभिन्न प्रकारके पौधोंसे खाद्य पदार्थ ग्रहण करना पड़ता है। आहारके रूपमें मनुष्यके शरीरका निर्माण करनेवाले ये यौगिक पदार्थ प्रोटीड, कर्बोज, वसा और खनिज लवण---इन चार वर्गोंमें विभक्त किये गये हैं।

प्रोटीड

प्रोटीडका निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन, ओक्सजन, नाइट्रोजन, गंधक और फास्फोरसके योगसे होता है। यह सारे शरीरमें पाया जाता है और उसके लिए बहुत उपयोगी होता है क्योंकि श्रम आदिके कारण जो क्षय होता है उसकी पूर्ति यही करता है; शरीरको शक्ति प्रदान करता है, रक्त

तथा रक्तांबुका निर्माण करता है और ओपजन ग्रहणकर उसे शरीरकी क्रियाओंके लिए सब भागोंमें पहुंचाता है। दूध, दही, सेम, मटर, मांस, अंडे, सभी तरहकी दालों आदिमें यह विशेष रूपमें पाया जाता है। शरीरमें वसाका अभाव होनेपर यह उसका भी स्थान ग्रहण करता है।

कर्बोज

यह कार्बन, ओषजन और हाइड्रोजनके संयोगसे बनता है और भोजनमें प्रायः इसीकी अधिकता रहती है। शर्करा, जो शुद्ध कर्बोज है, फलोंमें माधुर्यके रूपमें रहती है। शरीर इसे बड़ी आसानीसे पचा लेता है और श्वेतसारको भी, जो कर्बोज ही है, शरीर शर्कराके रूपमें परिवर्तित करके ही ग्रहण करता है। श्वेतसार बिना उबाले काममें नहीं आता क्योंकि उसके कणोंपर आवरण होता है जिसपर पाचक रसोंकी क्रिया नहीं हो पाती। उबालनेसे यह आवरण फट जाता है और तब पाचक रसोंका आसानीसे उसमें प्रवेश हो जाता है।

शरीरकी शक्तिका यही मुख्य स्रोत है। शरीरमें जहां अधिक क्रिया होती है वहां इसकी आवश्यकता होती है और पेशियां इसीके बलपर भारी काम करती हैं। यही कारण है जिससे शारीरिक श्रम करनेवालोंको इसकी अधिक आवश्यकता होती है। यह गेहूं, चावल, जौ, बाजरा, आलू, अमरूद, केला, खजूर, मुनक्का, किशमिश, गुड़, चीनी तथा अन्य मीठे पदार्थोंमें अच्छी मात्रामें पाया जाता है।

वसा

वसाका निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन और ओषजनके मेलसे होता है। यह शरीरमें त्वचाके नीचे रहती है और उसे उष्णता प्रदान करती है। शरीरमें कर्बोजका अभाव होनेपर, कार्य समान होनेके कारण यह उसका भी काम करती है और इसमें कर्बोजसे ढाई गुनी उष्णता प्रदान करनेकी शक्ति होती है, इसलिए जाड़ेके मौसिम या शीतप्रधान देशोंमें इसकी अधिक आवश्यकता होती है; गर्मीके दिनोंमें इसका पाचन ठीक

तरहसे नहीं होता इसलिए उस समय इसके ग्रहणकी प्रवृत्ति भी कम हो जाती है। कुछ लोगोंकी ऐसी प्रकृति भी होती है कि वे जो कुछ खाते हैं उसका अधिकांश वसामें परिवर्तित हो जाता है। घी-तेल इसकी प्राप्तिके मुख्य साधन हैं।

खनिज लवण और विटामिन

शक्ति या उष्णताकी दृष्टिसे खनिज लवणों और विटामिनोंकी कोई विशेषता नहीं है, फिर भी शरीरके लिए ये उपर्युक्त पदार्थोंसे कम महत्त्वके नहीं हैं क्योंकि ये शरीरको क्षार प्रदान करते हैं जो शरीरमें बढ़े हुए अम्लका शमन करनेके लिए बहुत आवश्यक है तथा शरीरको रोगी होनेसे भी बचाते हैं। इनकी प्राप्ति साग, तरकारियों, दूध और फलोंसे होती है, पर ये उचित रूपमें तभी प्राप्त हो सकते हैं जब ये पदार्थ यथासंभव अपने प्राकृतिक रूपमें ग्रहण किये जायं, गलत पाकक्रियाओं आदिके द्वारा निष्प्राण न बनाये जायं।

जल

इन खाद्य पदार्थोंके अतिरिक्त शरीरके लिए जल भी आवश्यक है जो अकार्बनिक है और हाइड्रोजन तथा ओषजनके मेलसे बनता है। शरीरका लगभग तीन-चौथाई हिस्सा यही होता है और शरीरकी अधिकांश क्रियाएं इसीके माध्यमसे सम्पन्न होती हैं। प्राकृतिक घोलक होनेके कारण यह शरीरका सारा मल और विष धोकर बहा देता है और शरीरकी आर्द्रता बनाये रखकर तापका नियंत्रण करता है। शरीरमें इसकी कमी होनेपर यह शुष्क हो जायगा और विषाक्त होकर शीघ्र ही मौतका शिकार हो जायगा।

आहारका संतुलन

प्रभावकी दृष्टिसे उपर्युक्त खाद्य पदार्थ दो वर्गोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। कर्बोज, वसा और प्रोटीड तो शरीरमें अम्ल उत्पन्न करते हैं और खनिज लवण क्षार प्रदान करते हैं। शरीरकी बाढ़, क्षयकी पूर्ति और शक्ति तथा उष्णताकी प्राप्ति अम्लोत्पादक पदार्थोंसे ही होती है,

इसलिए उनके अभावमें शरीर अपना काम नहीं चला सकता, पर स्वस्थ रक्त और तंतुओंमें क्षारकी प्रधानता ही नहीं रहती बल्कि उसकी मात्रा चौगुनी रहती है, इसलिए आहार भी ऐसा ही होना चाहिए जिसमें क्षार और अम्लका चार और एकका अनुपात बना रहे। क्षार और अम्लका संघर्ष निरन्तर चलता रहता है और अगर क्षार प्रदान करनेवाले पदार्थ शरीरको प्राप्त न हों तो अम्लके शमनके लिए तंतुओंसे क्षारका खिंचाव होने लगता है जिससे वे नष्ट हो जाते हैं। यह जरूर है कि संकट-कालके लिए शरीर क्षारका कुछ भांडार संचित रखता है जिससे कुछ समयतक काम चलता रह सकता है, पर अगर क्षारका यह अभाव बराबर बना रहे और अम्ल अधिक उत्पन्न होता रहे तो रोगकी स्थिति प्रस्तुत हो जायगी। इसलिए क्षारोत्पादक और अम्लोत्पादक पदार्थोंका संतुलन अवश्य बना रहना चाहिए; अम्लोत्पादक पदार्थोंमें अगर संतुलन न भी हो तो विशेष चिन्ताकी बात नहीं है क्योंकि शरीर प्रायः एकका अभाव होनेपर दूसरेसे उसका काम निकाल लिया करता है।

खाद्य पदार्थोंका संयोग

इस संतुलनके साथ ही खाद्य पदार्थोंके संयोगपर भी ध्यान देना आवश्यक है। हम साधारणतः जो कुछ खाते हैं उसमें स्वादका ही ध्यान अधिक रहता है, पाचनसंबंधी बातोंका बहुत कम। हममेंसे बहुतोंको इसका ज्ञान भी नहीं होता और वे बचपनसे जिन बेमेल चीजोंको एक साथ खानेके आदी होते हैं वही बराबर खाते जाते हैं जिससे शरीरको क्षति पहुंचती रहती है और रोग पैदा होनेपर उसका कारण और ही कुछ माना जाता है।

उपर्युक्त खाद्य पदार्थोंका पाचन एक ही साथ या एक ही प्रकारसे नहीं हुआ करता। कर्बोजका पाचन लालाके क्षारके माध्यमसे मुखमें ही आरंभ होता है और आमाशयमें जाकर पूर्ण होता है, पर प्रोटीडका पाचन मुंहमें आरंभ न होकर आमाशयमें अम्लरसके माध्यमसे होता है और

वसाका पाचन न तो मुंहमें आरंभ होता है और न आमाशयमें, उसका पाचन पक्वाशयमें होता है। अगर कर्बोजके साथ प्रोटीड खाया जाय तो प्रोटीडके कारण आमाशयमें अम्लरसका स्राव होने लगेगा और वह कर्बोजके साथ आये हुए क्षारको निष्क्रिय बना देगा जिससे उसके पाचनमें बाधा प्रस्तुत हो जायगी। इस दृष्टिसे चावल या रोटीके साथ दाल खाना, जो आमतौरसे खानेकी चाल है, संयोगविरुद्ध हो जाता है। रोटीके साथ क्षारोत्पादक पदार्थ ही खाना उपयुक्त है। कर्बोजके साथ नीबू, दही आदि खट्टी चीजें भी नहीं खायी जा सकतीं; क्योंकि ये लालारसका क्षार नष्ट कर देती हैं और आरंभिक पाचन ठीक तरहसे नहीं हो पाता; हां, प्रोटीडके साथ ये चीजें मजेमें खायी जा सकती हैं।

खाद्य पदार्थोके संबंधमें आजकल एक बड़ा दोष यह देख पड़ता है कि लोग उन्हें तल-भूनकर निष्प्राण तो बनाते ही हैं उन्हें मशीनोंमें तैयार कराकर कई महत्त्वके तत्त्वोंके साथ उनके रेशें भी निकलवा देते हैं जो आंतोंको सक्रिय बनाये रखकर कब्जका निवारण करनेमें बहुत सहायक होते हैं। आहारके संबंधमें यह ध्यान रखना जरूरी है कि खाद्य पदार्थ यथासंभव अपने पूर्णरूपमें ग्रहण किये जायं जिसमें आंतोंको रेशे अवश्य मिलें। इन बातोंके अतिरिक्त भोजनसंबंधी निम्नलिखित बातोंपर भी ध्यान देना आवश्यक है जिनका उल्लंघन स्वास्थ्यमें बाधक हुआ करता है।

१. यथासंभव कम खाइये जिसमें पाचनांगोंपर अधिक भार न पड़े।

२. भावावेश और क्लांतिकी हालतमें खाना बन्द रखिये।

३. पानी खाते समय न पीकर आधा घंटा पहले या डेढ़ घंटे पीछे पीजिये और दो-ढाई सेर पानी रोज पीजिये।

४. खूब चबाकर खाइये।

५. नाश्तेमें कोई ठोस पदार्थ न लेकर नीबूका रस मिला एक गिलास पानी पीजिये और अगर नाश्ता जरूरी हो तो ताजा फल या ताजा दूध सर्वोत्तम होगा।

६. भूख अच्छी होनेपर ही खाइये और रातका भोजन हल्का रखिये।

७. सिगरेट, चाय, कहवा आदि मादक पदार्थों तथा मांस, मछली आदिसे भरसक परहेज कीजिये।

८. कच्ची चीजें काफी खाइये, दाल और चिकनाईकी मात्रा यथासंभव कम रखिये और जो चीजें पाचनके अनुकूल न पड़ें उनसे परहेज कीजिये।

९. खाद्य पदार्थ रुचिकर हों और तरकारियां तथा फल ताजे हों।

१०. मिर्च-मसालोंसे परहेज कीजिये और नमककी मात्रा यथासंभव कम रखिये।

योगासनोंके प्रकार

आसनाभ्यासी दो श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। एक श्रेणी तो उन व्यक्तियोंकी है जिनका उद्देश्य केवल स्वास्थ्यकी प्राप्ति या उसकी सुरक्षा है, पर दूसरी श्रेणीके लोगोंका उद्देश्य केवल स्वास्थ्यकी प्राप्ति न होकर आध्यात्मिक प्रगति भी होता है और वे इस मंजिलको तैकर धारणा, ध्यान आदिकी दिशामें अग्रसर होना चाहते हैं। दोनों श्रेणियोंके व्यक्तियोंके लिए नाड़ी-संस्थान तथा ग्रंथि-संस्थानको स्वस्थ बनाये रखना आवश्यक होता है क्योंकि इन्हीं दोनों संस्थानोंके जरिये सारे शरीरका स्वास्थ्य सुरक्षित रखा जा सकता है, किंतु इन्हें स्वस्थ रखनेके लिए जिन आसनोंका व्यायाम आवश्यक होता है उनमें अंगोंकी क्रिया कुछ इस प्रकारकी होती है कि शरीरकी स्वाभाविक स्थितिसे उसका मेल नहीं बैठता जिससे शरीरकी यह स्थिति घंटों बनाये रखना, जो धारणा, ध्यान आदिके लिए आवश्यक होता है, बहुत कठिन है। इसी असुविधाका विचारकर योगाचार्योंने इसके लिए कुछ विशेष आसन रखे हैं। इस प्रकार अभ्यास करनेवालोंके भेदके अनुसार आसनोंके भी दो भेद हो जाते हैं—व्यायामात्मक और ध्यानात्मक।

व्यायामात्मक आसन

शीर्ष, सर्वांग, पश्चिमतान, भुजंग, शलभ आदि व्यायामात्मक आसन हैं जिनका मुख्य उद्देश्य, जैसा कि ऊपर कहा गया है, नाड़ी, ग्रंथि आदि संस्थानोंको स्वस्थ और संतुलित बनाये रखना है। प्रकृतिके साहचर्यमें ऋषियोंने अन्य प्राणियोंमें जो व्यायामात्मक क्रियाएं देखीं उन्हींके अनुकरण-पर इन आसनोंका रूप बहुत कुछ निर्धारित किया जैसा कि उनके नामोंसे स्पष्ट भी है, इसलिए मान्यता यह है कि आसन भी उतने ही प्रकारके हो सकते हैं जितने प्रकारके जीव होते हैं और चूंकि मनुष्य सभी तरहके जीवोंकी अवस्थासे गुजरता है इसलिए उन सबकी क्रियाएं मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक हैं। इसी आधारपर आसनोंकी संख्या योनियोंकी संख्याके अनुसार चौरासी लाखतक मानी गयी है, पर हठयोगमें सिर्फ चौरासी आसन माने गये हैं और कुछ आसन-विशारदोंने तो उनकी संख्या घटाकर तैंतीस कर दी है। आजकल पंद्रह-सोलह आसन विशेष रूपसे प्रचलित हैं और व्यायामकी दृष्टिसे ये ही काफी समझे जाते हैं।

ध्यानात्मक आसन

पद्म, सिद्ध आदि दूसरे प्रकारके अर्थात् ध्यानात्मक आसन हैं। ये सभी छोटे-मोटे कुछ परिवर्तनोंके साथ बैठनेके ऐसे प्रकार हैं जो कुछ ही दिनोंके अभ्याससे सिद्ध हो जाते हैं और शरीरकी स्वाभाविक स्थितिके अनुकूल होनेके कारण इनमें बिना किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट अनुभव किये घंटों धारणा, ध्यान आदिका अभ्यास किया जा सकता है। इन आसनोंमें मानसिक विक्षोभ उत्पन्न करनेवाली कोई शारीरिक क्रिया नहीं होती, शरीरकी क्षय-निर्माणकी क्रिया मन्द पड़कर बहुत कम हो जाती है और अगर कुछ दिनोंतक नियमित रूपसे घंटे-दो-घंटे अभ्यास किया जाय तो वह अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसमें मनको शरीरका कोई भान नहीं होता; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि योगाभ्यासी व्यायामात्मक आसनोंकी उपेक्षाकर केवल ध्यानात्मक आसनोंका अभ्यास करें।

उसके लिए व्यायामात्मक आसनोंका पहले अभ्यास करना इसलिए भी आवश्यक है कि उनके द्वारा मेरुदंड, सुषुम्ना और मस्तिष्क स्वस्थ और सशक्त रहकर कुंडलिनीके जाग्रत् होनेपर, जो योगाभ्यासीका उद्देश्य है, उससे सहयोग कर सकें क्योंकि वह इन्हींके योगसे आध्यात्मिक शक्तिका विकास करनेमें सहायक होती है। अगर वे स्वस्थावस्थामें न होनेके कारण कुंडलिनीकी क्रिया न संभाल सकें तो योगाभ्यासीके मार्गमें तरह-तरहके विघ्न प्रस्तुत हो सकते हैं, इसलिए जो व्यक्ति योगके द्वारा आध्यात्मिक शक्तिका विकास करना चाहता है उसके लिए दोनों प्रकारके आसनोंका अभ्यास करना परमावश्यक है।

वर्गीकरण

आसनोंके वर्गीकरणके संबंधमें कोई सर्वमान्य सिद्धांत नहीं है। कुछ लोग आसन करते समय शरीरकी स्थितिके अनुसार उनका वर्गीकरण करते हैं और खड़े होकर, बैठकर, लेटकर और उलटे होकर करनेके विचारसे उन्हें कुल चार वर्गोंमें रखते हैं; कुछ लोग अंगोंके व्यायामके विचारसे भी उनका वर्गीकरण करते हैं और सिर, गर्दन, वक्षस्थल, उदर और हाथ-पांव—इन पांचों भागोंके विचारसे उनको पांच वर्गोंमें रखते हैं। अभ्यास करनेवालोंके विचारसे यह वर्गीकरण कुछ सुविधाजनक है क्योंकि जिन्हें समयाभाव या और किसी कारणसे सभी आसनोंको करनेमें कठिनाई होगी वे प्रत्येक वर्गके दो-दो या तीन-तीन आसनोंके अभ्यासद्वारा कुछ ही समयमें सारे अंगोंका व्यायाम कर ले सकेंगे।

व्यायामात्मक आसन

शीर्षासन

व्यायामात्मक आसन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बहुसंख्यक हैं, पर उनमें जो थोड़ेसे बहुप्रचलित हैं उनमें शीर्षासन अपनी विशेषताओंके कारण शीर्षस्थानीय है। शीर्षासन नाम होनेका कारण यह है कि इसमें आसन सिरके बल किया जाता है।

विधि

कंबल चार तह करके या गद्दा, जो बहुत मुलायम न हो, फर्शपर डाल लीजिये और अगर कंबल या गद्दा मौजूद न हो तो गमछेकी गेंडुरी बना लीजिये जिसमें सिरके बल खड़ा होनेपर सिर गद्देपर रहे, कड़े फर्शपर न रहे क्योंकि वह मस्तिष्कके लिए हानिकारक होगा। अब पंजों और घुटनोंके बल बैठ जाइये और दोनों हाथोंकी उंगलियोंका गस्सा बनाकर कुहनियोंको लगभग सवा फुटके फासलेपर रखते हुए फर्शपर एक कोण बनाइये जिसका शीर्ष जुड़ी हुई उंगलियां हों। इसके अनंतर गर्दन झुकाकर सिरका पीछेका मोड़वाला भाग उंगलियोंके मेलसे बने हुए खातमें इस तरह जमाकर रखिये कि सिरके बल खड़ा होनेपर बीचका भाग गद्देपर रहे, ललाटकी ओरका भाग नहीं, क्योंकि ललाटकी ओरका भाग रहनेपर न तो रीढ़ सीधी रह सकेगी और न शरीरका संतुलन ठीक हो सकेगा, उलटे रीढ़ और आंखोंपर ज्यादा जोर पड़ेगा (चित्र १)।

अब सिर, हाथों और पंजोंको उसी अवस्थामें रखते हुए कमरको ऊपर उठाइये जिसमें घुटने सीधे होकर तन जायं (चित्र २) और तब पंजोंको सिरके कुछ निकट लाइये (चित्र ३)। सिर और हाथोंके बल

टिका हुआ धड़ कुछ पीछेकी ओर हटानेपर आप इस स्थितिमें हो जायेंगे कि पंजेको फर्शसे ऊपर उठा लेनेपर गिरनेकी संभावना नहीं रहेगी। अब घुटने एक-एक कर सीनेके पास लाइये और पंजोंको फर्शसे ऊपर

चित्र--१

उठाकर पैरोंको रानोंसे सटा लीजिये (चित्र ४) ये सारी क्रियाएं इतमीनानके साथ धीरे-धीरे होनी चाहिए जिसमें झटका लगनेसे शरीरका संतुलन नष्ट न हो जाय। इस अवस्थाको चार-पांच दिन अभ्यास कर लीजिये।

इसके सिद्ध हो जानेपर शीर्षासनका शेषांश करना कठिन न होगा; केवल जांघों और पैरोंको ऊपर फैलाकर धड़की सीधमें लाना बाकी रह जायगा। विशेष ध्यान इस बातपर देना है कि धड़ पीछेकी ओर झुककर संतुलन नष्ट न करने पाये। इतमीनानसे काम लेते हुए पीठ और नितंबोंकी

पेशियोंको सिकोड़कर जांघें क्रमशः सीधी कर लीजिय और पैरोंको मोड़कर इस प्रकार रखिये कि एड़ियां नितंबोंको छूती रहें (चित्र ५-६)।
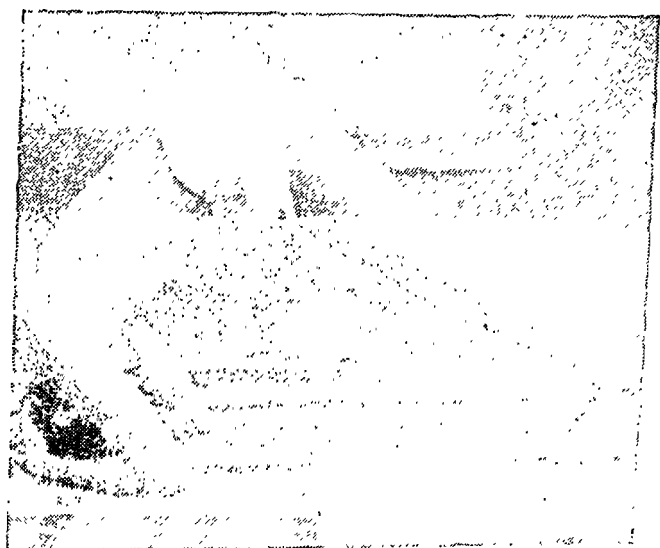
चित्र—२

इस अवस्थाका चार-पांच दिन अभ्यास कर लेनेपर पैरोंको सीध ऊपर ले जाइये और तब शीर्षासनकी अंतिम और पूर्णावस्था प्राप्त हो जायगी। इस अवस्थामें एड़ियां, नितंब, कंधे और सिर एक सीधमें हो जायंगे और आपका शरीर फर्शपर समकोण बनाता हुआ लंबका रूप धारण कर लेगा (चित्र ७)।

केवल सिर और हाथोंपर बोझ पड़नेके कारण पहले यह आसन कठिन प्रतीत होगा, पर सध जानेपर बोझ सारे अंगोंपर बंट जायगा और

इस स्थितिमें रहनेपर ठीक वैसे ही कष्ट नहीं जान पड़ेगा जैसे पैरोंके बल खड़ा रहनेपर।

कुछ लोग उपर्युक्त अवस्थाओंको क्रमशः पार करते हुए पूर्णावस्थातक पहुंचनेका अभ्यास न कर दीवार या किसी व्यक्तिके सहारे एकाएक पूर्णावस्था प्राप्त कर लेनेका प्रयत्न करते हैं, पर यह तरीका ठीक नहीं है।
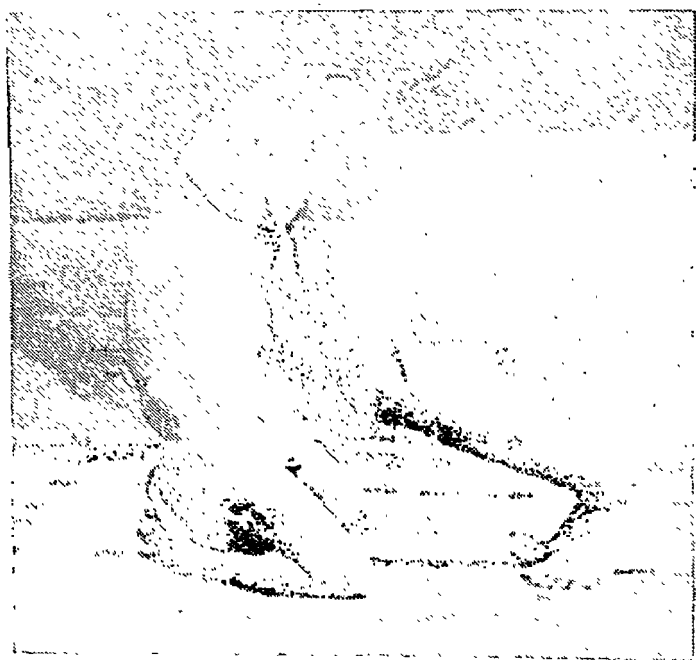
चित्र—३

इसमें एक खराबी तो यह है कि नीचेके भागका झटकेके साथ ऊपर जाना और उससे भी जोरदार झटकेके साथ नीचे आना रक्त-संचलनकी दृष्टिसे ठीक नहीं होता और दूसरी यह कि आसन करने लगनेपर भी निरवलंब

होनेकी भावना बराबर बनी रहती है और कभी-कभी लुढ़क पड़नेकी भी संभावना रहती है। क्रमानुसार चलनेपर बहुत जल्द अभ्यास हो जाता है। संतुलनपर नियंत्रण बने रहनेके कारण झटकेके साथ गिरनेकी संभावना
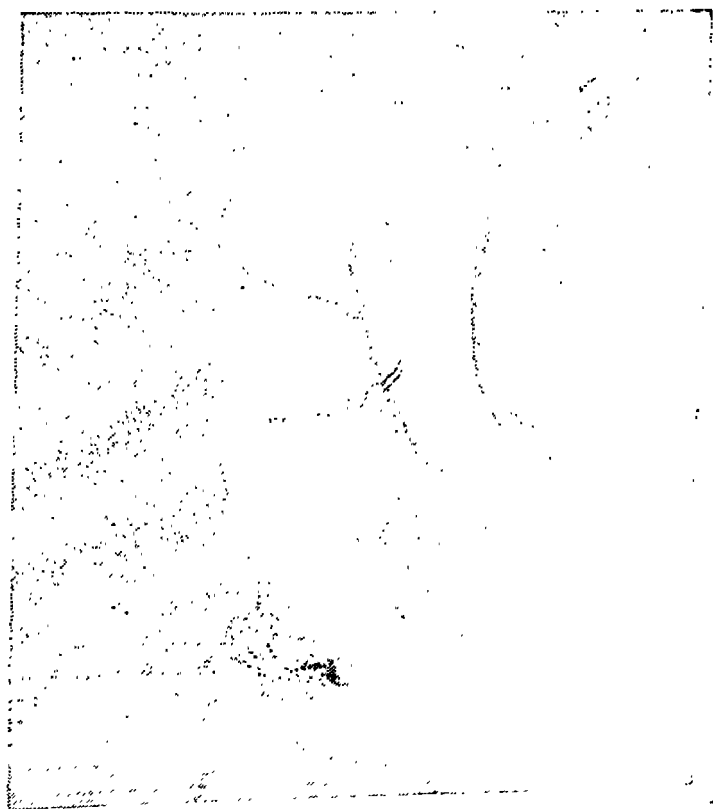
चित्र—४

नहीं रहती और शीर्षासनके वर्द्धित रूपोंको भी, जिनका आगे उल्लेख किया जायगा, करनेमें सरलता होती है।

समय

इस आसनमें समयकी पाबंदीपर विशेष रूपसे ध्यान देना आव-श्यक है। अगर और आसनोंका भी अभ्यास करना हो तो इसे पंद्रह
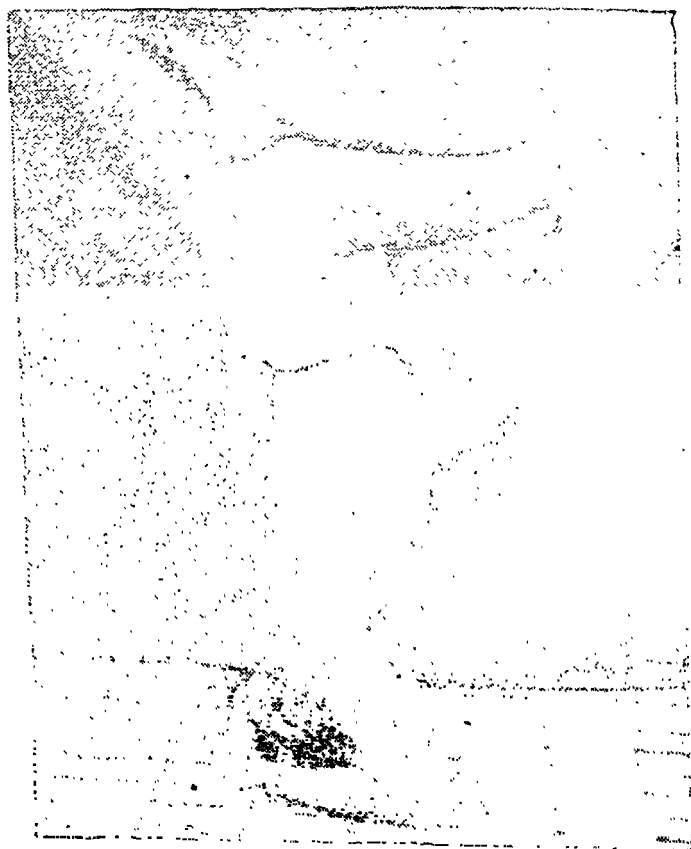
चित्र—५

चित्र—६

सेकंडसे आरंभ करके एक सप्ताहमें आधा मिनट और फिर हर सप्ताह आधा मिनट बढ़ाते हुए अधिक-से-अधिक बारह मिनट करना चाहिए।
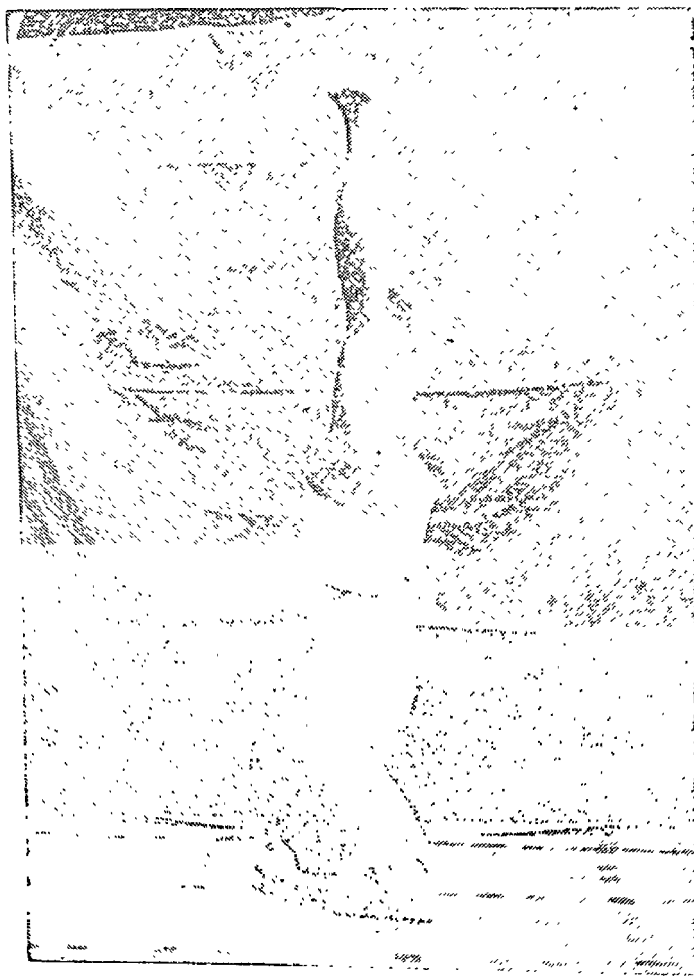
चित्र—७

अगर और आसनोंका अभ्यास न कर केवल शीर्षासन करना हो या रोग-विशेषके उपचारके रूपमें इसे करना हो तो समय अधिक-से-अधिक

चौबीस मिनटतक रखा जा सकता है। आसन करनेके बाद पूर्वावस्थामें आनेके लिए उसका क्रम उलट देना चाहिए।

निषेध

यों तो साधारण स्वास्थ्यवाला हर एक आदमी यह आसन कर सकता है, पर निम्नलिखित अवस्थाओंमें इसे करना ठीक नहीं है।

१—अगर कानमें दर्द हो, वह वह रहा हो या उसमें जख्म हो तो शीर्षासन न किया जाय और विकार दूर हो जानेपर भी कुछ दिनोंतक करना बंद रखा जाय।

२—जिनकी आंखोंकी केशिकाएं कमजोर हों वे यह आसन न करें।

३—१५० से अधिक और १०० से कम रक्त-भारवाले किसी विशेषज्ञ-की राय लेकर ही यह आसन कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

४—अगर दिल कमजोर हो तो शीर्षासन करनेमें बड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी, पर अगर करनेसे धड़कन बढ़ती हो तो किया ही न जाय।

५—अगर नाकका जुकाम पुराना पड़ गया हो तो शीर्षासनसे उसके बढ़नेकी संभावना रहेगी। हां, अगर आरंभिक अवस्थामें हो तो इससे लाभ पहुंच सकता है।

६—जिन्हें ज्यादा कब्ज रहता हो, मल बहुत कड़ा पड़ जाता हो वे भी शीर्षासन न करें।

७—थकान लानेवाली कड़ी कसरत करनेके तुरंत बाद शीर्षासन न किया जाय, कम-से-कम बीस मिनट रुक जाना चाहिए।

व्यायामात्मक लाभ

मनुष्यकी सारी शारीरिक और मानसिक क्रियाएं मस्तिष्कद्वारा संचालित होती हैं और सारा नाड़ी-संस्थान इसीसे संबद्ध है। शीर्षासनमें शुद्ध रक्त मस्तिष्कमें अधिक मात्रामें पहुंचनेसे मस्तिष्कके साथ-साथ सारे नाड़ी-संस्थानका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। आंख, कान, नाक और जीभ—इन चारों ज्ञानेंद्रियोंका केन्द्र मस्तिष्कके विभिन्न भागोंमें अव-

स्थित होनेसे उनको भी लाभ पहुंचता है और वे चिरकालतक अपना कार्य सुचारु रूपमें करने योग्य अवस्थामें बनी रहती है। पीयूषग्रंथि--जो अन्य निःस्रोत ग्रंथियोंका नियंत्रण करती है--तथा तृतीय दृक्कंदिका मस्तिष्कमें ही हैं। ये भी शुद्ध रक्त मिलनेसे बड़ी लाभान्वित होती है। ग्रवेयक और परिग्रैवेयक ग्रंथियोंको भी इससे लाभ पहुंचता है, पर विशेष नहीं।

साधारण अवस्थामे पेटका बोझ उसकी नाड़ियोंपर पड़ता है, पर शीर्षासनमें स्थिति उलटी होनेपर उन नाड़ियोंपरका बोझ कम हो जाता है और उन्हें अधिक रक्त मिला करता है। इसके साथ ही आंतोंको भी आराम मिलता और उनमें रुकी हुई अपान वायुको बाहर निकलनेका अवसर प्राप्त होता है। इन विविध क्रियाओंसे पाचनशक्ति बढ़ती और आंत मल-विसर्जनकी क्रिया सुचारु रूपमें करने लगती है जिससे भूख तेज हो जाती है।

पैरोंके बल खड़ा रहनेपर गुरुत्वाकर्षणके कारण हृदयकी ओर पहुंचनेवाले रक्तका प्रवाह बहुत मंद रहता है, पर शीर्षासनमें यह प्रवाह तीव्र हो जाता है जिससे हृदयकी क्रिया बढ़ जाती और रक्त अधिक मात्रामें शुद्ध होनेसे हृदयके साथ-साथ अन्य अंगोंको भी अधिक मात्रामें शुद्ध रक्त प्राप्त होता है।

शीर्षासनमें पैरोंका रक्त धड़की ओर खिंच जाता और आसन समाप्तकर पैरोंके बल खड़ा होनेपर रिक्त स्थानको भरनेके लिए शुद्ध रक्त तेजीसे पहुंचता है। इससे पैरोंको अधिक शुद्ध रक्त मिलनेके साथ-साथ रक्त-प्रवाहकी गति भी तीव्र होती है जो सारे शरीरके लिए लाभदायक होता है।

साधारण अवस्थामें सुषुम्नाका प्रवाह नीचेकी ओर होता है, पर शीर्षासनमें वह मस्तिष्ककी ओर होने लगता है जिससे स्मरण-शक्ति तीव्र हो जाती है। वीर्यकी नाड़ियोंका भी प्रवाह, जो नीचेकी ओर होता

है, इस आसनमें उलटी दिशामें होनेसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती और शुक्र ओजमें परिणत हो जाता है ।

इस प्रकार शीर्षासन मस्तिष्क, नाड़ी-संस्थान, निःस्रोत ग्रंथियों, पाचन-संस्थान और मलमार्गोंको सशक्त और सक्रिय बनाता है और चूंकि मनुष्यका स्वास्थ्य इन्हीं अंगोंके संतोषजनक रूपमें कार्य करनेपर निर्भर है इसलिए शीर्षासन मनुष्यके स्वास्थ्यकी रक्षामें बहुत अधिक सहायक होता है ।

आमयिक लाभ

उपर्युक्त संस्थानोंके, जिन्हें शीर्षासन स्वस्थ बनाये रखता है, कार्यमें अस्तव्यस्तता आनेपर ही रोग हुआ करते हैं, इसलिए इस प्रकार हुए रोगोंकी अवस्थामें इन संस्थानोंको शीर्षासनसे स्वास्थ्य प्रदानकर रोगसे पिंड छुड़ाया जा सकता है ।

नाड़ी-दौर्बल्य, जिसमें उत्साहहीनता, सिरका भारीपन, अल्पश्रममें क्लांति, सुस्ती, विस्मरण, अनिद्रा, अग्निमांद्य, कोष्ठबद्धता आदि लक्षण देख पड़ते हैं और जिसका संबंध मस्तिष्कसे होता है, शीर्षासनसे आसानीसे दूर हो जाता है । अग्निमांद्य और कोष्ठबद्धता तो शुद्ध रक्तकी प्राप्ति तथा नाड़ी-संस्थानको सशक्त बनानेसे ही दूर होती है जिसमें शीर्षासन बहुत प्रभावकर सिद्ध होता है ।

कंठ, यकृत और प्लीहा आसानीसे रक्त-संकुलताके शिकार हो जाते हैं । शीर्षासनद्वारा इन अंगोंमें रक्त-प्रवाह तीव्रकर संकुलता मजेमें दूर की जा सकती है ।

कब्ज आदिके कारण लोगोंको प्रायः आंत उतरनेकी शिकायत हो जाती है । अगर यह विकार आरंभिक अवस्थामें हो तो शीर्षासनकी सहायतासे उसकी रोक-थाम आसानीसे की जा सकती है, पर इसके लिए शीर्षासनके प्रचलित रूपमें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक होगा जिसके लिए किसी विशेषज्ञकी सहायता आवश्यक होगी ।

स्वप्नमें वीर्यपात होना, वीर्यका पतला पड़ना आदि दोष दूर करनेमें

शीर्षासन बड़ा सहायक होता है और दमेकी कुछ विशेष अवस्थाओंमें भी इससे लाभ पहुंचता है। यह आसन करनेवाली स्त्रियोंके गर्भाशय और जननेंद्रिय-संबंधी सारे रोग अच्छे हो जाते हैं और शारीरिक क्रियाएं ठीक हो जानेके कारण बांझपनतक दूर हो जाता है।

अगर मनुष्य नियमित रूपसे शीर्षासन करता जाय तो सफेद बाल काले हो जाते हैं, शरीरपर पड़ी हुई झुरियां दूर हो जाती हैं और युवावस्थाका-सा उत्साह और स्फूर्ति आ जाती है। इन्हीं सब विशेषताओंके कारण शीर्षासनको आसनोंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है और अपनेको विज्ञानका ठेकेदार माननेवाले पाश्चात्त्य देश भी भारतीय ऋषियोंकी ज्ञान-गरिमाके कायल हो इसे अपनाने लगे हैं।

वर्द्धित शीर्षासन

शीर्षासनकी पूर्णावस्था क्रमानुसार प्राप्त करनेका अच्छा अभ्यास हो जानेपर अभ्यासीको शरीरका संतुलन बनाये रखनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है और तब वह चाहे तो हाथों और सिरको यथास्थान रखते हुए ऊपर उठाये हुए पैरों और धड़का इच्छानुसार संचालन कर सकता है। शीर्षासनकी वर्द्धित अवस्थाएं शीर्षासनमें ऊपर उठे हुए अंगोंकी ही विभिन्न स्थितियां हैं।

पहली अवस्था

सिर और हाथोंको शीर्षासनकी अवस्थामें रखकर पैरोंको सीधे ऊपर उठाये रखनेके बजाय धड़को लंबके रूपमें रखते हुए पैरोंको बंधके रूपमें लानेसे इस अवस्थाकी सिद्धि होती है। पाद-बंधका रूप देनेके लिए अभ्यासीको पहले एक पैर—भरसक दाहिना—घुटनेसे मोड़कर बायीं जांघके मूलपर और फिर बायां पैर उसी प्रकार मोड़कर दाहिनी जांघके मूलके पास रखना पड़ता है। चूंकि यह पादबंध पद्मासनकी एक विशेषता

चित्र—८

है और धड़ और पैर ऊपर रखते हुए बनाया जाता है इसलिए इसे उत्थितोर्ध्व पद्मासन कहते हैं (चित्र ८)।

जिन लोगोंको शीर्षासनकी अवस्थामें रहते हुए पैरोंका यथेच्छ संचालन कर सकनेकी योग्यता नहीं होती उन्हें यह अवस्था प्राप्त करनेमें

चित्र—९

कुछ कठिनाई होती है क्योंकि इसमें हाथोंका सहारा लेना संभव नहीं होता, पर अभ्याससे धीरे-धीरे सिद्ध हो जाती है। अभ्यासके आरंभिक

कालमें अगर घुटने आगेकी ओर झुकाकर रखे जायं (चित्र ९) तो अच्छा है क्योंकि इस अवस्थामें संतुलन बिगड़नेपर पैर उसे संभालनेमें सहा-

चित्र—१०
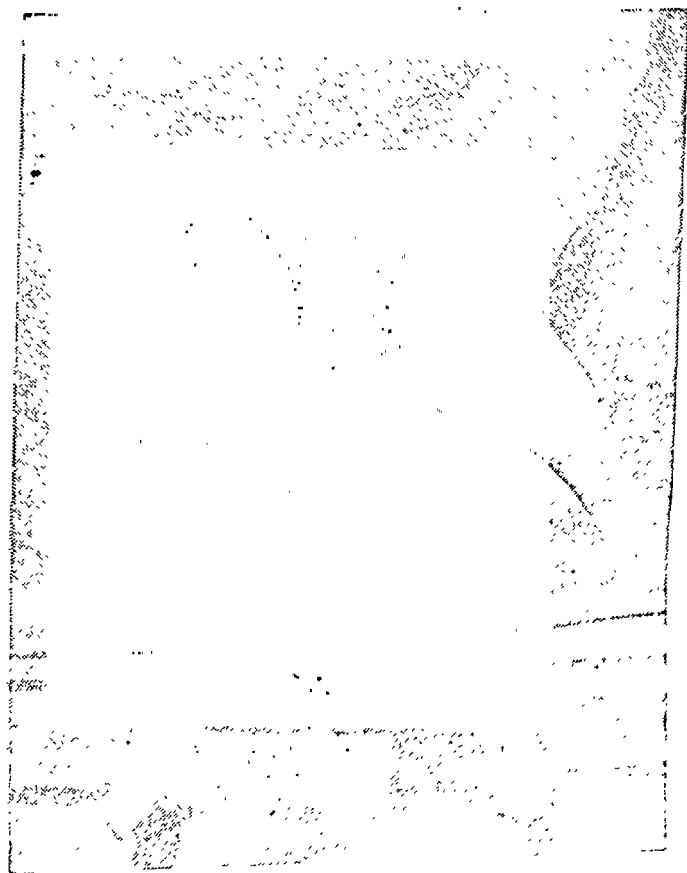
यक होंगे और अगर कहीं बिगड़ ही गया तो पैरोंको फर्शमें टिका देनेकी सुविधा रहेगी, पर अगर घुटने कुछ आगे रहनेके बजाय बिलकुल सीधे

रहें और संतुलन बिगड़नेपर कहीं पीछेकी ओर झुक जायं तो उन्हें किसी तरहका सहारा नहीं मिलेगा; हाथों और उनके बंधसे संतुलन बनाये रखने-

चित्र--११
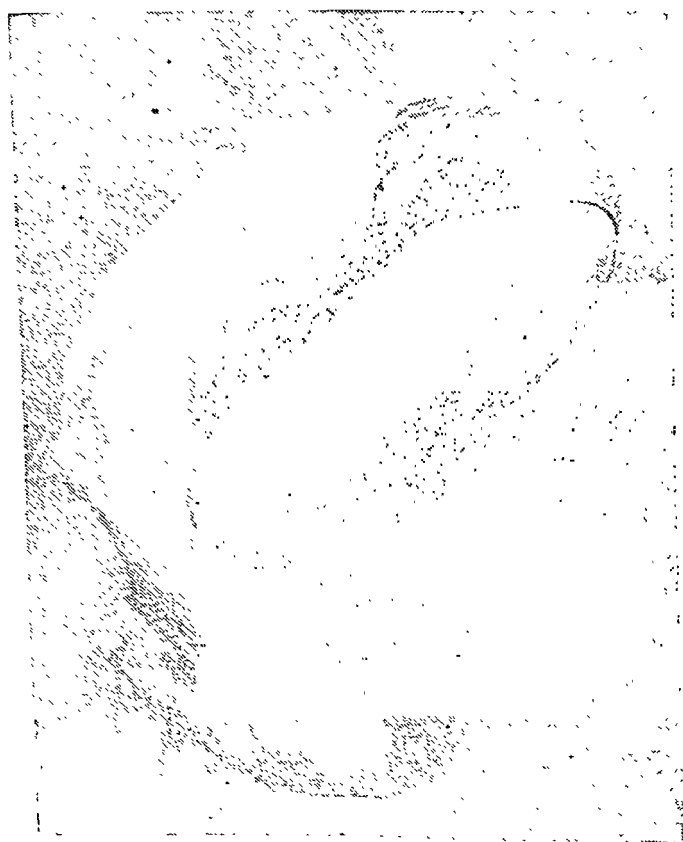
मे कोई खास मदद नहीं मिलेगी।

दूसरी अवस्था

कुछ दिनोंतक इस आसनका अभ्यास कर लेनेके अनंतर सिर और

हाथोंको यथापूर्व रखते हुए बंधमें स्थित पैरोंको कमर मोड़कर पेड़से छुलानेका प्रयत्न किया जाता है (चित्र १०) और फिर नीचेकी ओर खसकाकर उन्हें बाहु-मूलपर जमा दिया जाता है। पेड़ूकी पेशियोंको सिकोड़ने तथा पीठकी पेशियों और रीढ़में तनाव लानेसे इस अवस्थाकी सिद्धि होती है। इससे पीठ और रीढ़की क्रिया ठीक वैसी ही होती है जैसी पश्चिमतानासनमें होती है इसलिए कुछ लोग इसे पश्चिम पद्मासन कहते हैं, पर हमारे मतसे इसका नाम अर्द्धोर्ध्व पद्मासन अधिक उपयुक्त होगा (चित्र ११)।

तीसरी अवस्था

पैरोंको बाहुमूलपर जमाये हुए कंधों और धड़को मोड़नेसे तीसरे और अंतिम रूपकी सिद्धि होती है। इसमें प्रायः प्रत्येक संधि-स्थलपर शरीर मुड़ा रहता है और ऐसा प्रतीत होता है मानों बदन मोड़कर गांठ लगा दी गयी हो। रीढ़ और धड़ मुड़कर धनुषका-सा आकार ग्रहण कर लेते हैं और पेटकी पेशियोंका बहुत अधिक संकोच होता है। इसमें धड़वाला भाग कुछ-कुछ उठा रहता है इसलिए इसे अल्पोर्ध्व पद्मासन कहा जा सकता है। शीर्षासनकी अंतिम अवस्था होनेके कारण कुछ लोग इसे चरम शीर्षासन भी कहते हैं।

अवस्था-विपर्यय

कुछ आसनाभ्यासी शीर्षासनकी पूर्णावस्थातक पहुंचनेके लिए ऊपर बतलाये हुए क्रमका अनुसरण न कर उलटे क्रम अर्थात् तीसरी वर्णित अवस्थासे आरंभ करते हैं क्योंकि इसमें उन्हें आसानी और अधिक सुविधा जान पड़ती है। अभ्यासी पैरोंको सामने फैलाकर फर्शपर बैठ जाता है और फिर उन्हें बंधके रूपमें, जिसके बनानेकी विधि ऊपर बतलायी गयी है, रखता है। इसके अनंतर वह दोनों हाथोंकी गसी हुई उंगलियोंका स्थान बनाकर उसमें सिरका पिछला भाग रखता है अर्थात् बंधे हुए हाथों और

सिरको शीर्षासनकी आरंभिक अवस्थामें रखता है और तब बंधके रूपमें रखे हुए पैरोंको धीरे-धीरे ऊपर उठाकर बाहुमूलपर जमा देता और वर्द्धित शीर्षासनकी अंतिम अवस्था प्राप्त कर लेता है।

दूसरी अवस्था प्राप्त करनेके लिए धड़का मोड़ कम करते हुए कमर ऊपरकी ओर ले जाते और बंधे हुए पैरोंको पेड़से सटा देते हैं। तीसरी अवस्थामें धड़ सीधा कर लिया जाता है जिससे उत्थितोर्ध्व पद्मासनका रूप प्राप्त हो जाता है। इसके अनंतर पैरोंको ऊपरकी ओर फैलाकर शीर्षासनकी पूर्णावस्था प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रकार वर्द्धित शीर्षासनकी सारी अवस्थाएं उलट दी जाती हैं।

इन रूपोंके अलावा एक और भी रूप है जिसे कुछ लोग शीर्षासनके ही अंतर्गत मानते हैं, पर दरअसल इसे शीर्षासन न कहकर हस्तासन कहना चाहिए क्योंकि इसमें सिर फर्शसे उठा रहता है और शरीरका सारा भार हाथोंपर होता है। इसमें हथेलियोंको फर्शपर जमाकर सिर ऊपर रखते हुए पैरोंको शीर्षासनकी पूर्णावस्थावाले रूपमें रखते हैं।

वर्द्धित शीर्षासनकी सारी क्रियाओंमें शरीरपर बहुत ज्यादा जोर पड़ता है, इसलिए आमयिक लाभ पहुंचानेवाले आसनोंमें ये परिगणित न होकर केवल व्यायामात्मक माने जाते हैं। इनमें पीठ तथा पेशियोंका बहुत अच्छा व्यायाम हो जाता है। अभ्यासी सिर और हाथोंके बल अपने धड़को टिकाये रखकर वर्द्धित रूपवाली सारी क्रियाएं—सीधी और उलटी—क्रमसे बार-बार करता है। इसमें प्रत्येक अवस्था पूरी होनेपर कुछ देर रुकना आवश्यक होता है और शीर्षासनकी पूर्णावस्था विश्रामके लिए प्राप्त की जाती है।

अंगोंको प्रभावित करता है इसलिए इसका नाम सर्वांगासन रखा गया है।

विधि

कंवल बिछाकर पीठके बल लेट जाइये। शरीर बिलकुल ढीला, पैर सीधे, हाथ बगलमें और हथेलियां फर्शपर रहें (चित्र १२)। अब सांस
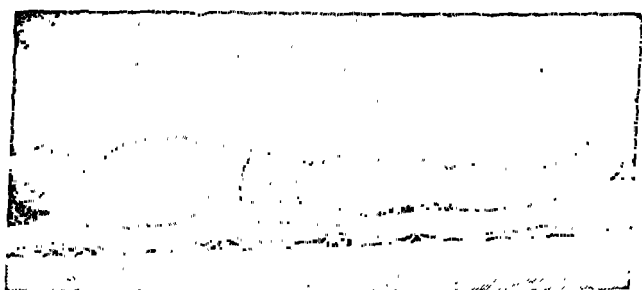
चित्र—१२

खींचकर पैरोंको सीधे रखते हुए नितंब-संधिके पाससे धीरे-धीरे उठाकर फर्शके साथ तीस अंशका कोण बनाइये (चित्र १३) और चार-पांच सेकंड इस स्थितिमें रहकर सांस बाहर कर दीजिये। अब फिर सांस लेकर पैरोंको और उठाइये और साठ अंशका कोण बना लीजिये (चित्र १४)। यहां भी पहलेकी तरह रुककर सांस बदल लीजिये और इस बार पैरोंको और उठाकर समकोण बना लीजिये (चित्र १५)।

अबतक हाथ और कुहनियां बिलकुल निष्क्रिय पड़ी हुई थीं। अब बाहुओंपर भार देकर नितंबोंके पाससे धड़को सीधे ऊपर ले जाइये जिसमें सीना ठुड्डीका स्पर्श करने लगे। इसके अनंतर कुहनियोंके पाससे हाथों-को मोड़कर उनसे धड़को ऊपरकी ओर धकेलिये जिसमें ठुड्डीपर धड़का
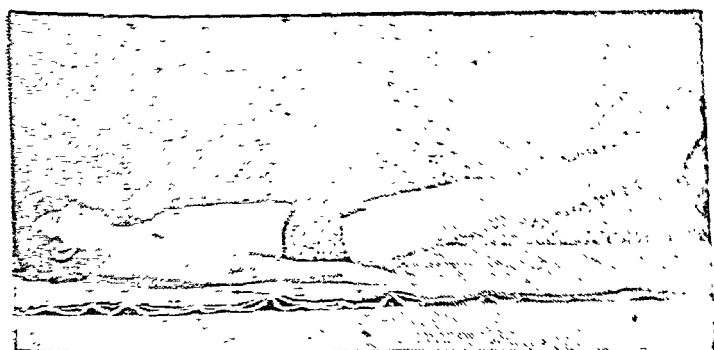
चित्र—१३

बाव बढ़ जाय और कंठकूपमें ठुड्डीके बैठ जानेसे ठुड्डी और सीनेका
ंध, जिसे जालंधर बंध कहते हैं, बन जाय। धड़को टेढ़ा होनेसे रोकनेके
लए हाथोंको अच्छी तरह जमाये रखिये। यही सर्वांगासनकी पूर्णावस्था
है (चित्र १६-१७)। इस अवस्थामें गर्दनका पृष्ठ भाग फर्शपर जमा रहेगा,
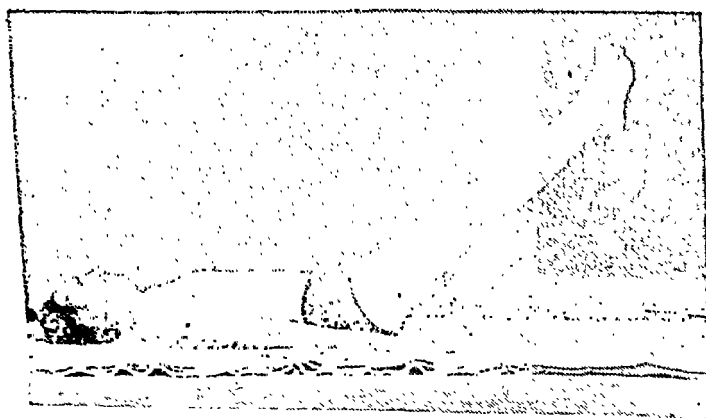
चित्र—१४

धड़ और पैर एक सीधमें होंगे, शरीरका सारा भार गर्दन, कंधों तथा बाहुओंपर रहेगा और अभ्यासीका ध्यान अवटुकापर केंद्रित रहेगा। दृष्टि
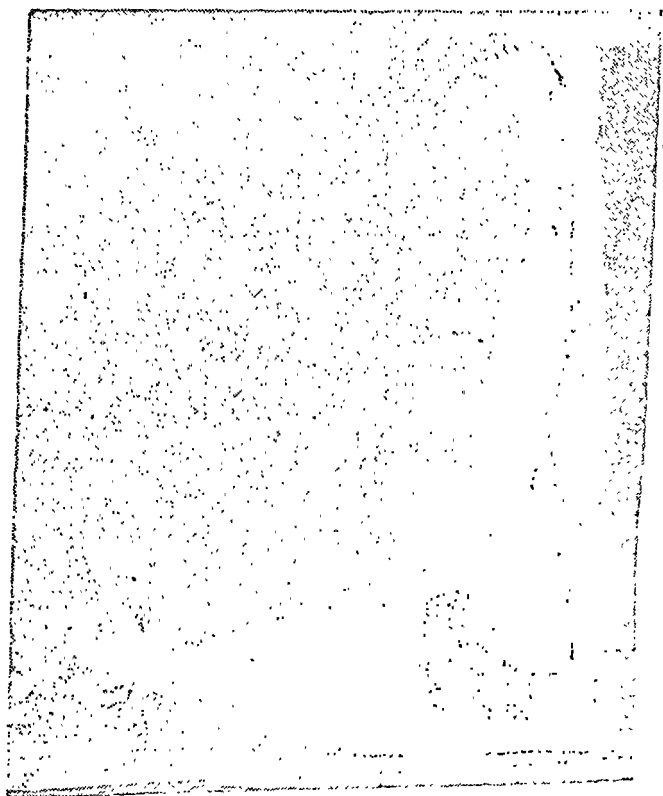
चित्र—१५

नासाग्रपर या पैरोंके अंगूठेपर जमी रहेगी। आसन कर लेनेपर पैर झटके-के साथ नीचे न लाकर उलटे क्रमसे धीरे-धीरे आरंभिक अवस्थामें लाये जायं।

चित्र—१६

कुछ लोग हाथ फैलाये रखकर केवल धड़को ठुड्डीसे लगानेको
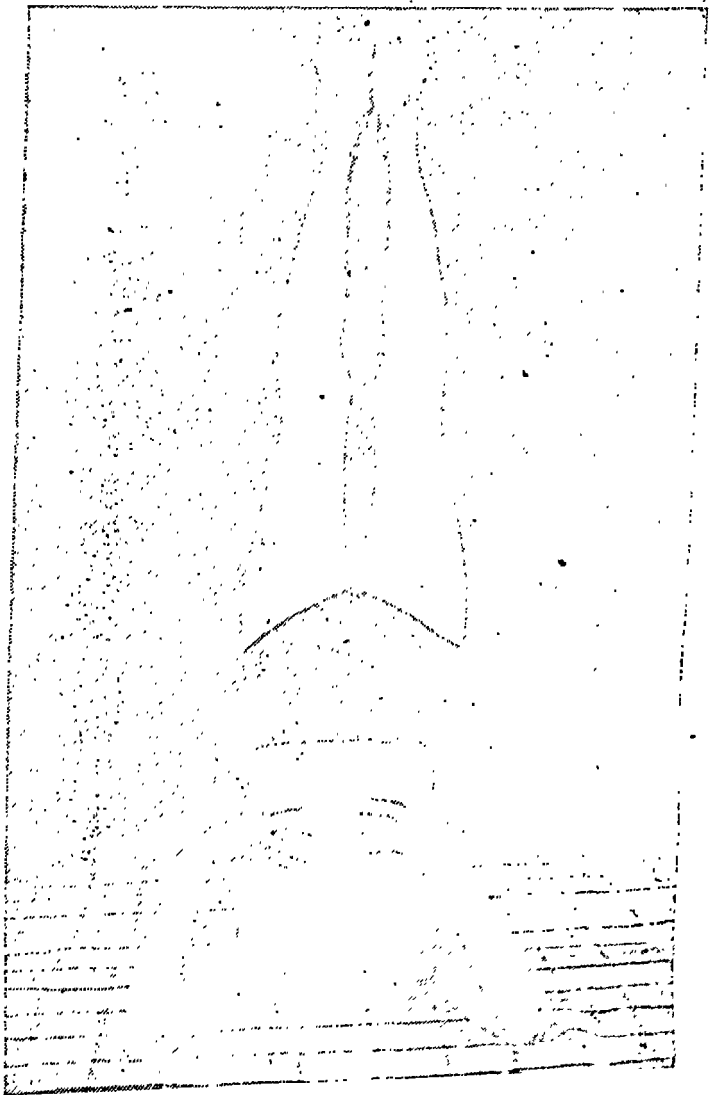
चित्र—१७ (पृष्ठ भागका रूप)

सर्वांगासनकी पूर्णावस्था मानते हैं। यह भी इसका एक प्रकार हो सकता है। बंध ठीक हो जानेपर सहारा हटाकर हाथोंको पहलेकी तरह फैला देना इसका वर्द्धित रूप माना जाता है, पर यह तभी होना चाहिए जब पूर्णावस्थाका अच्छा अभ्यास हो जाय और हाथोंका सहारा हटा लेनेपर धड़के झुककर टेढ़ा होनेकी संभावना न रहे।

समय

यह आसन आधे मिनटसे आरंभकर हर हफ्ते एक मिनट बढ़ाते हुए छः मिनटतक करना चाहिए। अगर और आसन या व्यायाम न कर केवल सर्वांगासन करना हो तो चौबीस मिनट सर्वांगासनमें और चार मिनट उसके वर्द्धित रूपमें लगाना चाहिए। सर्वांगासनसे पूर्ण लाभ उठानेके लिए सर्वांगासन और उसके वर्द्धित रूपके बाद तत्काल छः मिनट मत्स्यासन कर सर्वांगासनमें जितना समय लगाया गया है उतना ही शवासनमें लगाया जाय।

है जो योगाभ्यासियोंका अभीष्ट है। पुरुष तथा स्त्रीकी यौनग्रंथियोंपर इसका बहुत अच्छा प्रभाव देखनेमें आता है।

आमयिक लाभ

अवटुकाकी सदोप क्रियाके कारण प्रकट होनेवाले बुढ़ापेके लक्षण इस आसनके अभ्याससे बड़ी आसानीसे दूर हो जाते हैं। इसमें रक्तका खिचाव हृदयकी ओर होनेसे यौनग्रंथियोंकी संकुलता और तज्जन्य प्रदाह जाता रहता है जिससे धातुदौर्बल्य, स्वप्नदोप, ध्वजभंग आदि पुरुषोंके दोष और स्त्रियोंके भी यौनविकार चले जाते हैं। अग्निमांद्य और कोष्ठ-बद्धतामें, विशेषकर मत्स्यासनके साथ करनेपर, यह बहुत प्रभावकर होता है और कुछ लोगोंका तो यहांतक दावा है कि अगर दुग्धाहारके साथ-साथ ये आसन नियमित रूपसे किये जायं तो गलित कुष्ठ भी अच्छा हो जाता है।

शीर्पासन और सर्वांगासनका रूप बहुत कुछ समान होनेके कारण शीर्पासनकी वर्जित अवस्थाएं इसमें भी वर्जित हैं।

मत्स्यासन

मत्स्यासन नाम होनेका कारण यह है कि मनुष्य इस आसनमें स्थिर रहकर काफी समयतक मत्स्य अर्थात् मछलीकी तरह पानीपर तिरता रह सकता है।

विधि

कंवल बिछा लीजिये और पैरोंको सीधे फैलाकर बैठ जाइये। अब सुविधानुसार दाहिना या बायां पैर घुटनेसे मोड़कर दूसरे पैरके जघा-मूलपर जमा दीजिये और दूसरे पैरको भी मोड़कर उसी प्रकार दूसरे जघा-मूलपर रखिये। तलवे ऊपरकी ओर रहें और दोनों एड़ियां इस प्रकार रहें कि पासके पेड़ूको दबाती रहें (चित्र १८)। इस प्रकार पाद्मबंध बन

चित्र—१८

जानेपर पीठके बल लेट जाइये और घुटनोंको फर्शपर जमाये और बंध कड़ा रखते हुए कुहनियोंपर शरीरका भार रखकर धड़ और सिरको कुछ ऊपर उठा लीजिये। इसके बाद धड़को मोड़कर मेहराबका रूप देते हुए सिरको पीछेकी ओर झुकाकर फर्शपर टिका दीजिये अथवा लेटे-ही-लेटे धड़ और गर्दनको ऊपरकी ओर उठाकर पुलका रूप दे दीजिये। अब दाहिने हाथसे दाहिने पैरका और बायें हाथसे बायें पैरका अंगूठा पकड़ लीजिये। यही मत्स्यासनकी पूर्णावस्था है (चित्र १९,२०,२१)।

कुछ लोग पहले ही पीठके बल लेटकर बादमें पादबंध बनाते और गर्दन तथा धड़को ऊपरकी ओर उठाकर पूर्णावस्था प्राप्त करते हैं। कुछ अभ्यासी हाथोंसे पैरोंके अंगूठे न पकड़कर उंगलियोंका गस्सा बांध लेते और उससे सिरको सहारा देते हैं या दाहिने हाथके पंजेसे बायीं बाहु और

बायें हाथके पंजेसे दाहिनी बाहु नीचेसे थामकर एक-दूसरेसे तिरछे मिलनेवाले हाथोंको तकियेकी तरह सिरके नीचे रख लेते हैं। ये दोनों स्थितियां

चित्र--१९

चित्त एकाग्र रखनेमें सहायक होती हैं इसलिए आध्यात्मिक उत्कर्ष चाहनेवालोंके लिए सुविधाजनक होती हैं। पैरोंके अंगूठे पकड़नेमें ज्यादा जोर
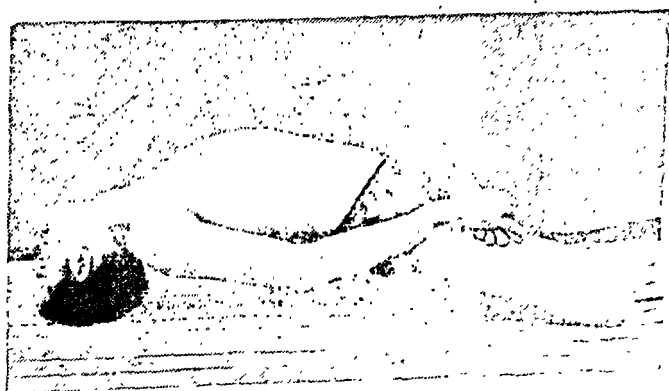
चित्र--२०

पड़नेके कारण व्यायामकी दृष्टिसे वह अधिक लाभदायक होता है। उठते समय सिरको हाथोंका सहारा दीजिये और तब पाद-बंध खोलकर आरंभिक स्थिति प्राप्त कर लीजिये।

व्यायामात्मक लाभ

जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है, सर्वांगासनसे समुचित लाभ
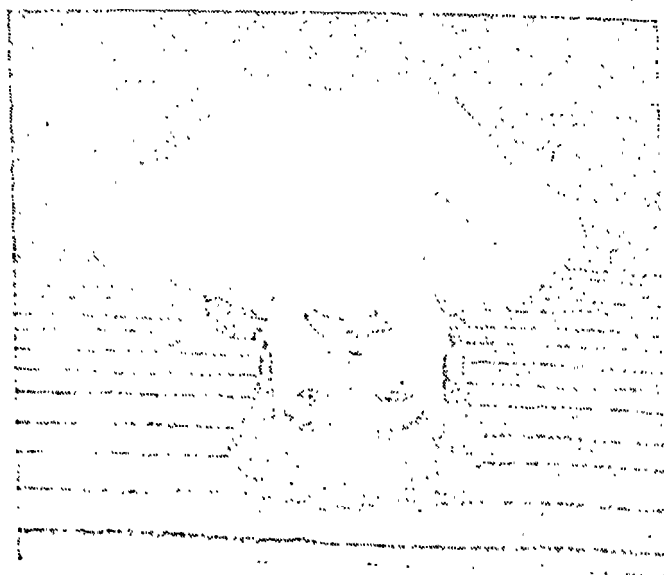
व्यायाम हो जाता है और फेफड़ोंमें सांस भरकर ओपजन अच्छी मात्रामें प्राप्त किया जा सकता है जिससे फेफड़े सशक्त होते और रक्त शुद्ध होता है। आमाशयकी पेशियोंमें तनाव आनेसे अपानवायुकी गति नीचेकी ओर होती है जिससे मलावरोध दूर हो जाता है। कुछ लोगोंका मत है कि अगर थोड़ा-सा जल-पानकर यह आसन किया जाय तो शौच-शुद्धिमें बड़ी सहायता मिलती है।

समय

यह आसन पंद्रह सेकंडसे आरंभकर हर हफ्ते उतना ही बढ़ाते हुए तीन मिनटतक करना चाहिए और अगर सर्वांगासनके पूरकके रूपमें करना हो तो अधिक-से-अधिक उसका चतुर्थांश समय इसमें लगाना चाहिये।

हलासन

हलासनमें आसनाभ्यासीके शरीरकी आकृति हल-जैसी हो जाती है और यही इस नामकरणका कारण है।

विधि

कंबल बिछाकर पीठके बल लेट जाइये। पेशियां बिलकुल ढीली रहें। पैर सीधे, हाथ बगलमें और हथेलियां फर्शपर रहें (चित्र २२)। अब
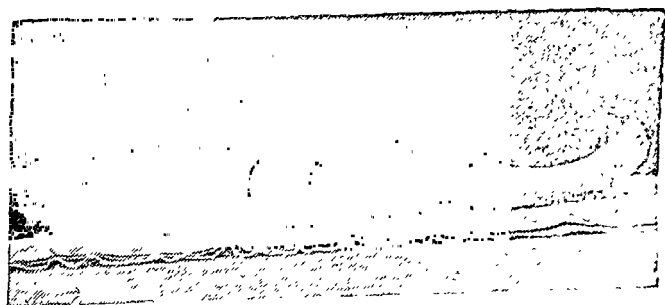
चित्र—२२

पैरोंको नितंब-संधिके पाससे धीरे-धीरे ऊपर उठाकर फर्शके साथ ३० श का कोण बना लीजिये (चित्र २३) और इस स्थितिमें कुछ सेकंड

सर्वांगासनमें की जाती हैं। कुछ लोग इस अवस्थाको 'अर्द्धहलासन' कहते हैं।

चित्र—२५

इस अवस्थामें कुछ सेकंड रुकनेके बाद धड़ जहांतक हो सके फर्शपर जमाये रखकर नितंबोंके और पीठके नीचेके भागको कुछ उठाइये और पैरोंको सीधा रखते हुए सिरकी ओर ले जाकर यहांतक नीचे उतारिये

कि अगूठे सिरके वाहर फर्शपर जा लगें और सिर घुटनोंके पास पैरोंको छूता रहे। इस स्थितिमें नितवों और जांघोंका दवाव रीढ़के निचले भागपर

चित्र--२६

रहेगा। हाथ पहलेकी तरह फर्शपर ही जमे रहेंगे। यही हलासनकी पहली अवस्था है (चित्र २६)।
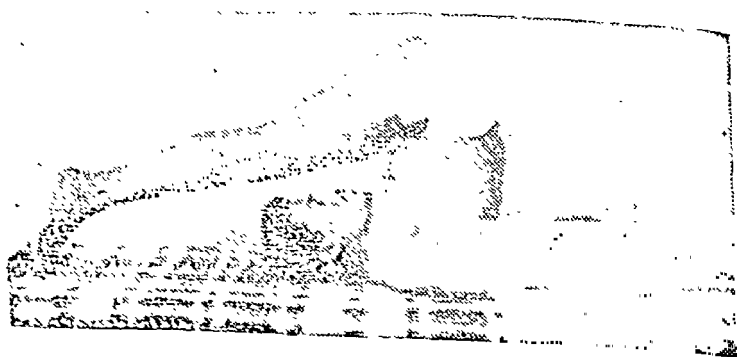
चित्र--२७

इस ग्रवस्थामें कुछ सेकंड रुकनेके बाद कमर कुछ ग्रौर ऊपर उठाइये ग्रौर पैरोंको खसकाकर सिरसे कुछ ग्रौर दूर ले जानेका प्रयत्न

चित्र--२८

कीजिये। इसमें रीढ़का तनाव ग्रौर बढ़ जायगा ग्रौर सिर जांघोंके मध्यतक पहुंच जायगा। यही हलासनकी दूसरी ग्रवस्था है। इसमें

भी कुछ सेकंड रुककर पैरोंको और दूर ले जानेका प्रयत्न कीजिये। दबाव पीठके ऊपरी भागपर होगा और कमर सिरके सामने चली आयेगी (चित्र २७, २८)।

चित्र--२९

इस स्थितिमें कुछ सेकंड रुककर अंतिम अवस्थाकी ओर बढ़िये। अबतक आपके हाथ कोई हरकत नहीं कर रहे थे। अब उन्हें उनके स्थानसे हटाकर उगलियोंका गस्सा बांध लीजिये और हाथोंके सहारे सिरपर जोर लगाकर पैरोंके अंगूठोंको कुछ और खसकाइये जिसमें जोर गर्दनपर पड़ने लगे और ठुड्डी कंठकूपमें बैठकर जालंधर बंध बना ले। पैरोंको सीधा रखनेका ध्यान बराबर बना रहे। यही हलासनकी अंतिम अवस्था है (चित्र २९,३०)[1]।

---

[1]कुछ लोग प्रथमावस्था प्राप्त कर लेनेपर पैरोंके अंगूठोंको हाथोंसे पकड़ लेनेको ही हलासनकी अंतिम अवस्था मानते हैं।

आरंभिक अवस्था पुनः प्राप्त करनेके लिए पहले हाथोंका गस्सा खोल लीजिये और उन्हें पहलेकी तरह फैलाकर रखिये। इसके बाद अंगूठोंको धीरे-धीरे खसकाकर सिरकी दिशामें ले जाइये और यह अवस्था प्राप्त करनेके लिए जो क्रियाएं करते आये हैं उन्हें उलटे क्रमसे करते जाइये और अंतमें पीठके बल लेटनेकी स्थितिमें पहुंच जाइये।

समय

यह आसन एक मिनटसे आरंभकर हर हफ्ते एक मिनट बढ़ाते हुए चार मिनटतक ले जाना चाहिए। अंतिम अवस्थामें लगभग आधा मिनट ठहरा जाय। चार मिनटमें इसकी सारी क्रियाएं छः बार की जा सकती हैं। व्यायामात्मक लाभ प्राप्त करना अभीष्ट हो तो विभिन्न अवस्थाओंमें अधिक देर न रुककर इसे पुनः पुनः करना आवश्यक होगा। ध्यानात्मक अभ्यासके लिए अंतिम अवस्थाकी ओर न बढ़कर प्रथमावस्थामें ही देरतक रहना अच्छा होता है, बादकी तीनों अवस्थाओंको करना इसके लिए आवश्यक नहीं है।

हलासनके लिए रीढ़में लोच होना आवश्यक है। जिनकी रीढ़ कड़ी है उन्हें आरंभमें पैरोंको फर्शपर टिकाना कठिन होगा; उन्हें जोर न लगाकर धीरे-धीरे ही रीढ़में झुकाव लानेका प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि एकाएक जोर लगाने या झटका देनेसे पेशियोंको क्षति पहुंच सकती है। आरंभमें झुकाव जितना ला सकें उतनेसे ही संतोष कीजिये और उसे कुछ देरतक बनाये रखिये। दो-एक दिन बाद झुकाव कुछ बढ़ जायगा। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ते जानेसे रीढ़में पूरी लोच आ जायगी। रीढ़के झुकाववाले सभी आसनों—भुजंगासन, धनुरासन तथा पश्चिम-तानासन—और विशेषकर योगमुद्रामें यह बात एक-सी लागू होती है।

व्यायामात्मक लाभ

रीढ़का कड़ापन बुढ़ापेका चिह्न है; उसके लोचदार होनेसे युवावस्थाकी विशेषताएं--शक्ति, स्वास्थ्य, उत्साह और स्फूर्ति--बनी रहती हैं। हलासनमें रीढ़की लोच और उससे संबद्ध नाड़ियोंका स्वास्थ्य कायम रहनेसे मनुष्यमें बुढ़ापेके लक्षण नहीं आने पाते। आमाशयकी नाड़ियोंको भी इससे शक्ति प्राप्त होती है। अवटुका ग्रंथियोंका स्वास्थ्य बनाये रखनेमें
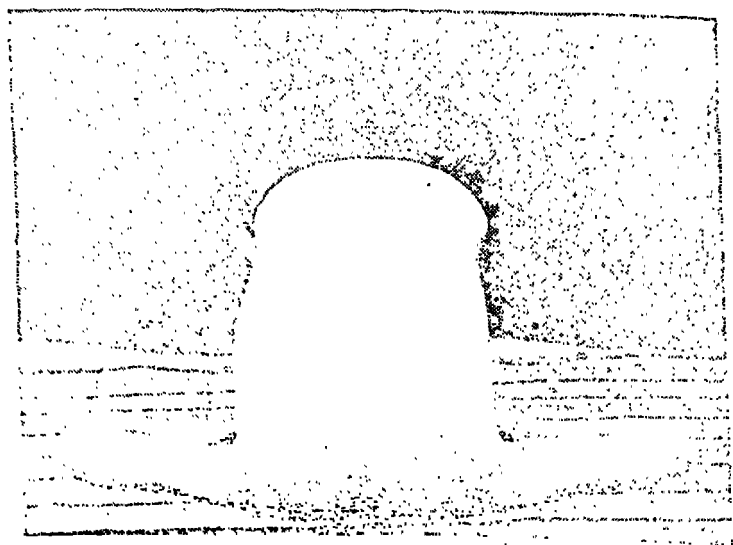
चित्र--३० (पृष्ठ भागका रूप)

यह भी सर्वांगासन-जैसा ही प्रभावकर होता है। अगर हलासनके साथ-साथ भुजंगासन, शलभासन और धनुरासन भी किये जायं तो लाभकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है।

आमयिक लाभ

अग्निमांद्य और कोष्ठबद्धता, विशेषकर जब ये आमाशयकी पेशियों

और पाचनांगोंकी नाड़ियोंकी कमजोरीके कारण हों, दूर करनेमें यह आसन बहुत अधिक सहायक होता है। कमर, पीठ और गर्दनके रोग भी इसके अभ्याससे अच्छे हो जाते हैं। अगर यकृत और प्लीहा बढ़ गये हों तो यह उन्हें कम कर साधारण अवस्थामें ला देता है, पर बहुत बढ़ी हुई अवस्थामें इसे करना ठीक नहीं। कुछ विशेष प्रकारके प्रमेहोंमें भी इससे सहायता ली जा सकती है।

भुजंगासन

भुजंगासन नाम होनेका कारण यह है कि इस आसनमें अभ्यासीके शरीरकी आकृति फन फैलाये हुए सर्पकी-सी हो जाती है।

विधि

कंबल बिछाकर पेटके बल लेट जाइये। सारे बदनकी पेशियां ढीली रहें, ललाट फर्शपर टिका रहे, पैर एक साथ सीधे फैले रहें, तलवे ऊपरकी ओर हों और हाथ कुहनियोंसे मुड़कर दोनों ओर सीनेकी बगलमें हथेलियों-के बल फर्शपर जमे रहें।

अब ठुड्डी बाहरकी ओर निकालते हुए सिर ऊपर उठाइये और उसे पीछेकी ओर जहांतक ले जा सकें ले जाइये। सिर उठाते समय सीना फर्शसे लगा रहेगा और धड़ निष्क्रिय रहेगा। सिर पीछेकी ओर अच्छी तरह झुक जानेपर पीठकी पेशियोंको सिकोड़ते हुए सीना धीरे-धीरे ऊपर उठाइये। आरंभमें कुछ दिनोंतक कुहनियोंका कोण बढ़ाकर हाथोंका कुछ सहारा लिया जा सकता है, पर सीना उठानेका प्रयत्न पीठकी पेशियोंके संकोचद्वारा ही होना चाहिए और हाथोंपर जहांतक हो सके कम भार पड़ना चाहिए। ऐसा न होनेपर इस आसनसे यथोचित लाभ होनेकी आशा कम रहेगी। रीढ़ एकाएक मोड़नेका प्रयत्न मत कीजिये, कशेरुकाओंको एक-एक कर ऊपर उठाते जाइये और यह देखते जाइये कि
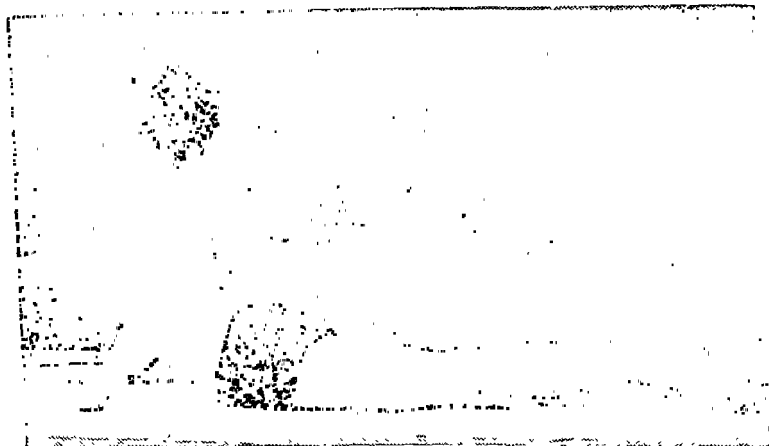
चित्र—३१

रीढ़का मोड़ क्रमशः नीचेकी ओर बढ़ता जा रहा है। वक्षस्थलीय भाग पीछेकी ओर काफी मुड़ जाना चाहिए।

चित्र—३२ (पृष्ठ भागका रूप)

अब हाथोंका कुछ और सहारा लीजिये और उनकी तथा पीठकी मददसे रीढ़के नीचेके भागकी कशेरुकाओंको भी मोड़िये जिसमें सारा जोर त्रिकास्थिपर पड़े। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ३१,३२)। इस अवस्थामें रहते समय आमाशयकी पेशियों, विशेषकर दोनों नलीका तनाव होगा और पेटकी अंदरकी पेशियोंपर दवाव पड़ेगा। अगर इस समय पेशियोंको सिकोड़नेका प्रयत्न किया जाय तो दवाव और भी बढ़ेगा।

निर्धारित समयतक पूर्णावस्थामें रहनेके बाद रीढ़का मोड़ कम करते हुए सीना नीचेकी ओर लाइये। यह क्रिया भी बहुत धीरे-धीरे होनी चाहिए। पहले पीठके नीचेके भागका मोड़ दूर किया जायगा। कशेरुकाएं एक-एक कर नीचेसे ऊपरतक ढीली होती जायंगी। अंतमें वक्षस्थल और गर्दनका मोड़ दूर कर देनेपर रीढ़ पड़ी लकीरका रूप धारण कर लेगी और ललाट फर्शपर पहलेकी तरह टिक जायगा।

अभ्यासकी आरंभिक अवस्थामें श्वास-प्रश्वासकी क्रिया साधारण रूपमें होती रहेगी, पर प्राणायामके अभ्यासमें कुछ आगे बढ़ने और श्वासपर नियंत्रण रखना सीख जानेपर सांस आसन आरंभ करते समय ली जायगी और पूर्णावस्था प्राप्त हो जानेपर धीरे-धीरे छोड़ी जायगी।

समय

यह आसन तीनसे सात वारतक किया जा सकता है। पूर्णावस्थामें दस सेकंड रुकना काफी होगा। जो लोग कमजोर हैं वे पांच ही सेकंड रुक सकते हैं।

व्यायामात्मक लाभ

इस आसनमें पेशियोंका वारी-वारीसे संकोच और विकोच होनेसे उनका अच्छा व्यायाम हो जाता है जिससे वे स्वस्थ रहती हैं और साथ ही रीढ़की लोच भी वनी रहती है। साधारण अवस्थामें शरीरके इस भागमें

रक्तका संचार कम होता है, पर आसन करते समय प्रवाह तीव्र हो जानेसे संबद्ध पेशियोंको शुद्ध रक्त अच्छी मात्रामें मिलता है। कशेरुकाओंके
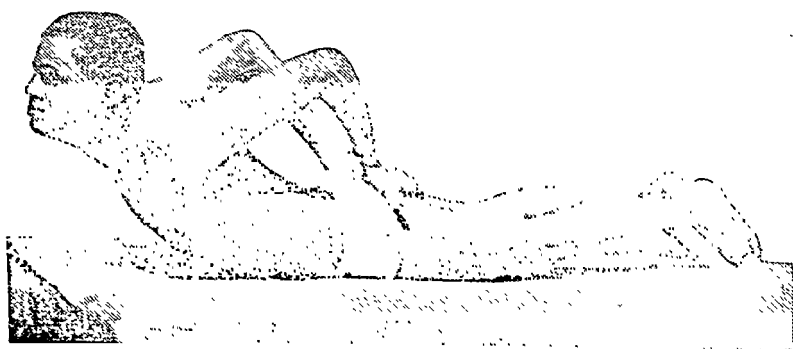
चित्र—३३

(कुछ लोग इस स्थितिको भुजंगासनकी पूर्णावस्था कहते हैं।)

बीच-बीचसे इकतीस जोड़ नाड़ियां निकलती हैं और कहा जाता है कि इडा तथा पिंगला नाड़ियां भी पृष्ठवंशके दोनों ओरकी पेशियोंमें ही अवस्थित हैं। इस आसनसे इन भागोंमें रक्त-संचार अच्छा होनेसे उक्त नाड़ियोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता है—वे अपना स्वास्थ्य और सक्रियता अच्छी अवस्थामें बनाये रखनेकी स्थितिमें बनी रहती हैं और कुंडलिनीको जाग्रत् करनेमें भी सहायक होती हैं। इसी उद्देश्यसे योगाभ्यासी कुंभक लगाकर इस आसनमें चार-पांच मिनटतक स्थित रहते हैं। इस आसनसे आमाशयकी पेशियोंका भी अच्छा विकास होता है।

व्यायामात्मक लाभ

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, हलासनके साथ भुजंगासन, शलभासन और धनुरासन करनेपर हलासनसे होनेवाले लाभोंकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है। इन आसनका पीठकी पेशियोंपर इतना गहरा असर

होता है कि अगर थकावटके कारण पीठमें दर्द हो तो एक ही बार आसन करनेसे चला जाता है और रीढ़की कोई अस्थि स्थानभ्रष्ट हो गयी हो तो वह भी इसके सहारे अपने उचित स्थानपर पहुंच जाती है। भोजनके बाद तत्काल उदराध्मान होता हो तो इससे अच्छा लाभ होता है, पर जिन्हें भोजनके कुछ देर बाद आध्मान होता हो उन्हें शलभासन और अर्द्ध-शलभासनमें अधिक समय लगाना चाहिए। धनुरासन दोनों प्रकारके रोगियोंके लिए लाभदायक होता है, पर इन तीनों आसनोंका अवटुका ग्रथियोंपर हलासन-जैसा कोई प्रभाव नहीं होता।

शलभासन

भुजंगासन और शलभासन एक तरहसे एक दूसरेके पूरक हैं। भुजंगासनमें नाभिसे ऊपरका भाग ऊपर उठाते और मोड़ते हैं और इसमें नाभिसे नीचेका भाग जिससे मनुष्यकी आकृति शलभ अर्थात् टिड्डीकी-सी हो जाती है और यही इस नामका कारण है।

विधि

कंबल बिछाकर पेटके बल लेट जाइये। तलवे ऊपरकी ओर रहें मुट्ठी बंधी या खुली रहे, हाथ बगलमें इस प्रकार फैलाकर रखे जायं कि
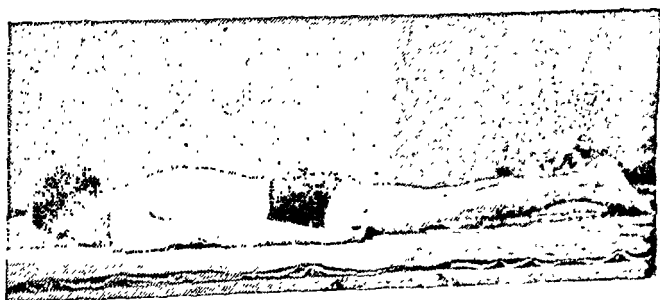
चित्र—३५

कंधों और हथेलियोंका पृष्ठभाग फर्शपर जमा रहे और सिरका झुकाव कुछ पीछेकी ओर हो जिसमें ठुड्डी फर्शपर अच्छी तरह टिकी रहे। अगर आप चाहें तो नाक और मुंह भी फर्शपर टिकाये रख सकते हैं (चित्र ३४)। इसके अनंतर पूरी सांस लेकर अपना बदन कड़ा कर लीजिये और सीने तथा हाथोंपर पूरा भार डालते हुए पैरोंको ऊपर उठाइये। पैरोंके
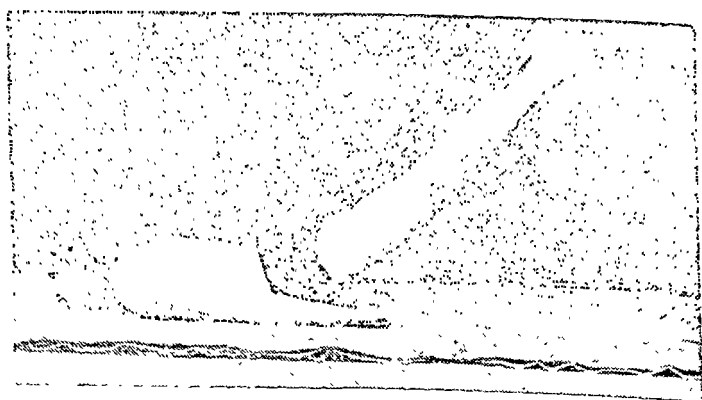
चित्र—३५

साथ-साथ कटिप्रदेश भी कुछ ऊपर उठाया जायगा। अब घुटने सीधे और कड़े रखते हुए सांस रोक रखनेका प्रयत्न कीजिये और इसका समय दस सेकंडसे क्रमशः बढ़ाते हुए बीस सेकंडतक ले जाइये (चित्र ३५)। सांस रोकना कठिन जान पड़ने लगनेपर बदनकी पेशियां ढीली कर दीजिये और पैरोंको धीरे-धीरे नीचे लाते हुए सांस भी बाहर निकालते जाइये। श्वास-प्रश्वासकी गति साधारण हो जानेपर इसकी आवृत्ति करनेका प्रयत्न कीजिये।

इस आसनका एक और भी प्रकार यत्र-तत्र प्रचलित देख पड़ता है। इसमें भुजंगासनकी ही तरह हाथोंको कुहनियोंसे मोड़कर फर्शपर जमाये

रखते और नाभिप्रदेशका भाग फर्शपर रखकर शरीरका शेष भाग--सिर, छाती और पैर--ऊपर उठाते हैं।

आरंभमें यह आसन सिर्फ तीन बार कीजिये। सांस रोक रखनेका कुछ अभ्यास हो जानेपर इसे सात बारतक कर सकते हैं। ध्यान इस बातपर रखिये कि बलात् सांस रोक रखने और आसन जमाये रहनेके कारण फेफड़ोंपर ज्यादा जोर न पड़ने पाये। कहनेका अभिप्राय यह कि सांस जबर्दस्ती रोक रखनेकी कोशिश न की जाय, जितनी देर आरामके साथ रोक सकें उतनी ही देर रोकिये।

आसनोंमें शलभासन ही एक ऐसा आसन है जिसमें पैरोंको धीरे-धीरे न तानकर एकाएक तान दिया जाता है, पर एकाएक तानते हुए भी इस बातका खयाल रखना पड़ता है कि पैरोंको झटका न लगने पाये, इसलिए पैर ताननेकी क्रिया उतावलीमें न होकर शांत भावसे ही होनी चाहिए।

व्यायामात्मक लाभ

चूंकि यह आसन प्राणायामके साथ किया जाता है इसलिए इसमें फेफड़ोंका अच्छा व्यायाम हो जाता है। इसमें पेटका भी दबाव बढ़ता है इसलिए वस्तिदेशकी पेशियां काफी लाभान्वित होती हैं। नाभितक-का भाग ऊपर उठाकर मोड़नेसे रीढ़के निम्न भागका भी व्यायाम होता और उसकी लोच बनी रहती है। पैरोंमें तनाव आनेसे उनकी भी पेशियां पुष्ट होती हैं।

आमयिक लाभ

श्वासात्मक व्यायाम होनेके कारण फेफड़ोंका विकार दूर करनेमें यह बहुत सहायक होता है और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, हलासन, भुजंगासन आदिके साथ इसका अभ्यास करनेपर उदरसंबंधी विकारोंमें

यह बहुत लाभदायक होता है। यकृतकी शिथिलता और कटिदेशके विकार भी इससे दूर हो जाते हैं।

निषेध

इस आसनमें फेफड़ोंकी विशेष सक्रियता आवश्यक होती है, इसलिए जिनके फेफड़े कमजोर हों या जिन्हें दिलकी धड़कन हो उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए।

अर्द्ध शलभासन

अर्द्ध शलभासन नाम होनेका कारण यह है कि इसमें शलभासनका केवल आधा व्यायाम होता है। यह कोई स्वतंत्र आसन है भी नहीं; शरीरको शलभासन करने योग्य स्थितिमें लानेकी गरजसे ही इसे आसनका रूप दे दिया गया है।

विधि

कंबल बिछाकर लेट जाइये और शलभासनकी आरंभिक अवस्था ग्रहण कर लीजिये। आरंभमें सारी पेशियां ढीली रखी जायंगी और
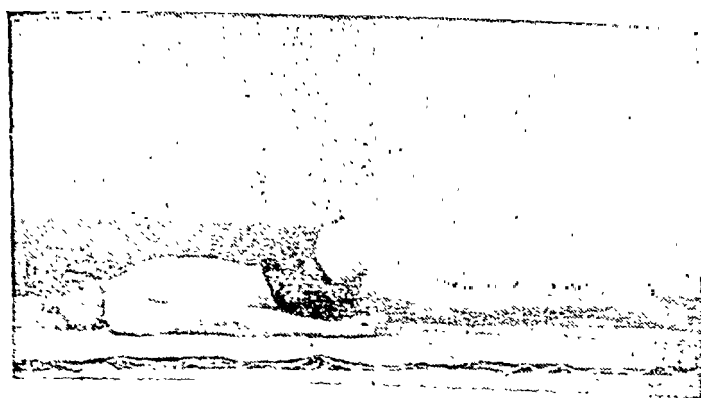
चित्र—३६

पूरे आसनमें श्वास-प्रश्वासकी क्रिया साधारण रूपमें चलती रहेगी—सांस रोकनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। लेट। जानेके बाद केवल एक पैर—दाहिना या बायां—संबद्ध पेशियोंको सिकोड़कर घुटना सीधा रखते हुए ऊपर उठाइये, पर यह क्रिया इतनी धीमी गति और आरामके साथ हो कि इस क्रियासे संबद्ध अंगके सिवा और कहीं जोर न पड़ने पाये। इस समय दूसरा पैर तथा धड़ फर्शपर पूर्ववत् जमे रहेंगे (चित्र ३६)। पैर अधिक-से-अधिक ऊपर ले जानेके बाद धीरे-धीरे उसे नीचे लाकर आरंभिक अवस्थामें रखिये और तब दूसरे पैरको भी पहलेकी तरह ऊपर ले जाकर नीचे लाइये। इस प्रकार दोनों पैर बारी-बारीसे तबतक ऊपर-नीचे जाते-आते रहेंगे जबतक यथेच्छ व्यायाम न हो जाय।

इसका कुछ दिनोंतक अभ्यास कर लेनेपर पेशियोंको कड़ा करने और सांस रोकनेका अभ्यास आरंभ कीजिये, पर इस बातका खयाल रखिये कि इसके कारण संबद्ध अंगोंपर जोर न पड़ने पाये। जब आपको यह विश्वास हो जाय कि अब आप पूर्ण शलभासन मजेमें कर लेंगे तो उसे भी आरंभ कर दे सकते हैं।

लाभ

अर्द्ध शलभासनसे भी वे ही लाभ होते हैं जो शलभासनसे होते हैं, पर कम मात्रामें।

धनुरासन

धनुरासनकी पूर्णावस्थामें शरीरकी आकृति चढ़े हुए धनुषकी-सी हो जाती है। धड़ और घुटनेतकका भाग धनुषका और आपसमें मिले हुए हाथ और घुटनेसे नीचेका भाग खिंची हुई प्रत्यंचाका रूप ग्रहण कर लेते हैं। यही यह नाम पड़नेका कारण है। एक प्रकारसे यह आसन भुजंगासन और शलभासनका संयुक्त रूप है; क्योंकि भुजंगासनमें तो

नाभिसे ऊपरका भाग ऊपरकी ओर उठाया और मोड़ा जाता है और शलभासनमें नाभिसे नीचेका, पर इसमें नाभिदेश फर्शपर जमाये रखकर उसके ऊपर और नीचेके भाग ऊपर ताने जाते हैं।

विधि

पैरोंको सटाकर रखते हुए पेटके बल लेट जाइये। ठुड्डी फर्शपर टिकी रहे। अब पैरोंको घुटनोंसे पीछेकी ओर मोड़कर जांघोंपर लाइये और दाहिना टखना दाहिने हाथसे और बायां टखना बायें हाथसे पकड़ लीजिये। हाथोंके टखनोंपर अच्छी तरह जम जानेपर धड़ और घुटनोंको ऊपरकी ओर उठाइये जिसमें वदनके फर्शपर टिके हुए दोनों ओरके हिस्सोंमें मोड़ आ जाय और बदनका सारा भार फर्शपर टिके हुए नाभिके आस-

चित्र—३७

पासवाले भागपर पड़े। इसके अनंतर प्रत्यंचाका रूप ग्रहण किये हुए हाथों और पैरोंको जहांतक हो सके ऊपरकी ओर ताननेकी कोशिश कीजिये जिसमें बदनका मोड़ अधिक हो जाय। इस प्रयत्नमें हाथों और पैरोंके बीच रस्साकशीकी-सी स्थिति प्रस्तुत हो जायगी—दोनों एक दूसरेको अपनी ओर खींचनेका प्रयत्न करते रहेंगे। घुटने सटे रहेंगे और कंधे तथा घुटने एक सीधमें हो जायंगे। शरीरका संतुलन बनाये रखनेका खयाल रखिये क्योंकि इसमें इधर-उधर लुढ़क पड़नेकी संभावना रहती है। यही धनुरासनकी पूर्णावस्था है (चित्र ३७)। इच्छित कालतक यह अवस्था बनाये रखनेके बाद सीना और घुटने नीचे लाइये और टखनोंसे हाथोंको हटाकर उन्हें बगलमें फैलाकर रख लीजिये।

इस आसनमें अंगोंकी क्रियाएं त्वरापूर्वक की जाती हैं इसलिए इस बातका ध्यान रखना आवश्यक होता है कि कहीं झटका न लगे या कोई जोड़ ऐंठ न जाय। आरंभमें घुटनोंके सटे रहनेपर बदनमें काफी मोड़ लाना कठिन हो सकता है इसलिए आप चाहें तो घुटनोंको पांच-छः इंचके फासलेपर रखकर अभ्यास बढ़ानेके साथ-साथ उन्हें सटानेका प्रयत्न करते जा सकते हैं। पेशियोंमें लोच आ जानेपर उन्हें सटाये रखकर मोड़ लानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी और तभी आसनकी पूर्णावस्था प्राप्त होगी। आरंभमें श्वास-प्रश्वासकी क्रिया भी साधारण रूपमें चलती रह सकती है, पर कुछ अभ्यास हो जानेपर पूर्णावस्थामें रहते समयतक सांस रोक रखना बहुत आसान हो जायगा।

समय

आरंभमें पूर्णावस्थामें पांच सेकंड रहना काफी होगा। धीरे-धीरे समय बढ़ाकर तीन मिनट या शक्तिके अनुसार कुछ अधिक समयतक रह सकते हैं। यह आसन तीन-चार बार किया जा सकता है।

व्यायामात्मक लाभ

भुजंगासन और शलभासनका संयुक्त रूप होनेके कारण इस आसनमें

उक्त दोनों आसनोंसे होनेवाले लाभ होते हैं, पर उनकी मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है क्योंकि इसमें कुंभक करनेपर भी कोष्ठपर महाप्राचीराका शलभासनकी तरह दवाव नहीं पड़ता जिससे फेफड़ोंका उतना अच्छा व्यायाम नहीं हो पाता। पृष्ठभागकी पेशियोंका भी भुजंगासन-जैसा अच्छा व्यायाम नहीं होता क्योंकि उसमें पेशियोंके संकोचके ही कारण पीठमें मोड़ आता है, पर इसमें हाथों और पैरोंके तनावसे मोड़ पैदा होता है। इसके अलावा एक वात और है। भुजंगासनमें झुकाव और ढीलापन क्रमश: ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर होता है जो उसकी विशेषता है; इस आसनमें इसका बिलकुल अभाव है; फिर भी इसमें एक विशेपता ऐसी है जो दोनों आसनोंमेंसे किसीमें भी नहीं है। वह यह कि दोनों नली तथा पेड़ूकी पेशियोंका, जो नितंवसंधिसे मिली हुई रहती हैं, इसमें धड़ और जांघें साथ ही ऊपर उठानेके कारण अपेक्षाकृत अधिक तनाव और व्यायाम होता है। हाथों और पैरोंकी कशमकशके कारण उनका भी अच्छा व्यायाम हो जाता है।

आमयिक लाभ

इस आसनसे आमाशय, आंतों आदिके दोष दूर होते, वातरोगका नाश होता और पाचनशक्ति बढ़ती है जिससे भूख तेज होती और उदरके क्षेत्रमें रक्तका संचार अधिक होता है। स्त्रियोंके लिए यह आसन विशेष रूपसे लाभदायक होता है।

पश्चिमतानासन

चित्र—३८

चित्र—३९

विधि

पैरोंको फैलाकर बैठ जाइये। पैर सटे रहें और हथेलियां बगलमें फर्शपर जमी रहें (चित्र ३८)। अब कुछ झुककर दाहिने हाथकी तर्जनीसे दाहिने पैरका अंगूठा और बायें हाथकी तर्जनीसे बायें पैरका अंगूठा पकड़ लीजिये और पकड़े हुए अंगूठोंको बिना घुटने उठाये अंदरकी ओर लीजिये। इससे पैरोंके पिछले भागकी पेशियोंमें काफी तनाव आ जायगा। इसके बाद सांस बाहर निकालकर धड़को कमरसे मोड़कर जांघोंसे इस प्रकार मिलानेका प्रयत्न कीजिये कि आपका सिर घुटनोंके अंदर आ जाय। इस अवस्थामें आपका शरीर कमरके पाससे दोहर जायगा, कंधोंसे पैरोंके अंगूठोंका फासला बहुत कम रहेगा और कुहनियां फर्शपर टिक जायंगी। इस बातका ध्यान बराबर बना रहे कि इस क्रियामें घुटने जरा भी न उठने पाये क्योंकि कटिदेशमें तनाव लानेके लिए घुटनोंका सीधे रहना अनिवार्यतः आवश्यक है। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ३९)। बाहर निकली हुई सांस जबतक रोकी जा सके तबतक पूर्णावस्था बनाये रखिये, पर सांस जबर्दस्ती रोकनेकी कोशिश मत कीजिये, आरामसे जितनी देर रोक सकें उतनी ही देरतक रोकना अच्छा है।

आरंभमें घुटनोंकी पिछली पेशियोंमें, जिनके संकोचसे वे मुड़ते हैं

करें और आरामके साथ जितना झुक सकें उतनेसे ही संतोष करें। जोर लगाने या झोंका देनेसे क्षति पहुंच सकती है। घुटनोंको ऊपर न उठने देनेका ध्यान बराबर बना रहे। आरंभमें जितना झुकाव होगा उसमें
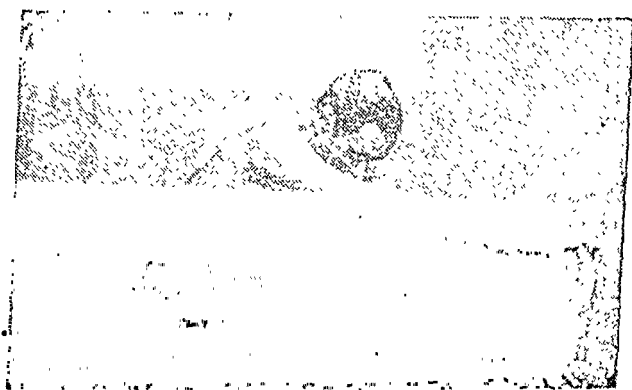
चित्र—४०

अभ्याससे दिनोंदिन वृद्धि होती जायगी—पेशियोंमें लोच आती जायगी और पृष्ठवंश अधिक झुकता जायगा।

अगर इस श्रेणीके लोग पूर्ण पश्चिमतानासन न कर अर्द्ध पश्चिमतानासन करें तो उन्हें अधिक सुविधा होगी। वे पहले एक पैरको मोड़कर दूसरे पैरकी जांघसे तलवा सटाकर रखें और आगे फैले हुए पैरका अंगूठा पकड़कर झुकनेकी कोशिश करें (चित्र ४०,४१)। इसके अभ्यास-द्वारा वे कुछ ही दिनोंमें पूर्ण पश्चिमतान करने योग्य स्थितिमें पहुंच जायंगे।

समय

अगर यह आसन केवल व्यायामके उद्देश्यसे किया जाय तो समय तीन मिनटसे अधिक नहीं लगाना चाहिए। अगर पेशियोंमें लोच मौजूद हो तो

चित्र—४१

पंद्रह सेकंडसे आरंभकर धीरे-धीरे बढ़ाते हुए एक बारमें एक मिनट लगाना चाहिए, पर अगर पेशियां कड़ी हों और मोड़ पूरा न हो सकता हो तो थोड़ी-थोड़ी देर करते हुए तीन बारमें एक मिनट लगाना चाहिए। मेरुदंडमें लोच आ जानेपर एक मिनटमें तीन बार न कर केवल एक बार किया जाय। इस प्रकार एक-एक बारमें एक-एक मिनट लगाते हुए कुल तीन बार किया जाय।

व्यायामात्मक लाभ

पश्चिमतानासनमें प्रायः सारे शरीर और विशेषकर घुटनोंके पिछले भागकी पेशियोंका बहुत अच्छा तनाव और शिथिलन होता है। इसके साथ ही पेडूकी अगली पेशियोंका बहुत अच्छा संकोच होता है जिससे उनका स्वास्थ्य और सक्रियता बनी रहती है। मेरुदंडके निम्नभागके व्यायामसे वस्तिदेशकी नाड़ियोंको अधिक रक्त मिलता है जिससे उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे अभ्यास करनेवालोंके लिए इस आसनका बहुत अधिक महत्त्व माना जाता है क्योंकि इससे कुंडलिनीके जाग्रत् होनेमें सहायता मिलती और पूर्णावस्थामें रहते समय अनाहत नाद सुन पड़ता है, पर उनके लिए शक्ति और आवश्यकताके अनुसार इस आसनकी पूर्णावस्थामें एक घंटा या इससे अधिक रहनेका नित्य अभ्यास करना जरूरी है।

आमयिक लाभ

इस आसनमें वस्तिदेशका अच्छा व्यायाम होनेके कारण उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है जिससे अग्निमांद्य और कब्ज दूर हो जाता है, पर अधिक देरतक करनेसे कब्ज घटनेके बजाय और बढ़ जाता है इसलिए इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तियोंको तीन बार या तीन मिनटसे अधिक यह आसन नहीं करना चाहिए। स्वप्नदोष, शुक्रतारल्य, अर्श तथा कटिशूलमें भी यह बहुत लाभदायक होता है। इससे मेरुदंडकी लोच बनी रहनेके कारण बुढ़ापा जल्द नहीं आने पाता।

अर्द्ध मत्स्येंद्रासन

अर्द्ध मत्स्येंद्रासनमें मत्स्येंद्रासनकी केवल आधी क्रियाएं की जाती हैं। कहा जाता है कि मत्स्येंद्रासनका आविष्कार सुप्रसिद्ध गोरखपंथके प्रवर्तक बाबा गोरखनाथके गुरु स्वामी मत्स्येंद्रनाथने किया था और वे इसी आसनमें ध्यान भी किया करते थे। उन्हींके नामपर इस आसनका नामकरण हुआ है। आध्यात्मिक दृष्टिसे मत्स्येंद्रासनका बहुत अधिक महत्त्व माना जाता है, पर उसका अभ्यास बहुत कठिन होनेके कारण व्यायामात्मक आसनोंमें उसे स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती और शरीर-संस्कारके विचारसे अर्द्ध मत्स्येंद्रासन ही किया जाता है जिसका अभ्यास करना कठिन नहीं है।

विधि

दोनों पैरोंको पास-पास रखते हुए फैलाकर बैठ जाइये। अब दाहिना पैर घुटनेसे मोड़कर एड़ी मूलाधार——अंडकोप और गुदाके बीचवाले कोमल भागपर जमाइये, पर साथ ही यह भी ध्यान रखिये कि अंडकोपका कोई हिस्सा मूलाधार और एड़ीके बीच दबने न पाये। बचावका उपाय यह है
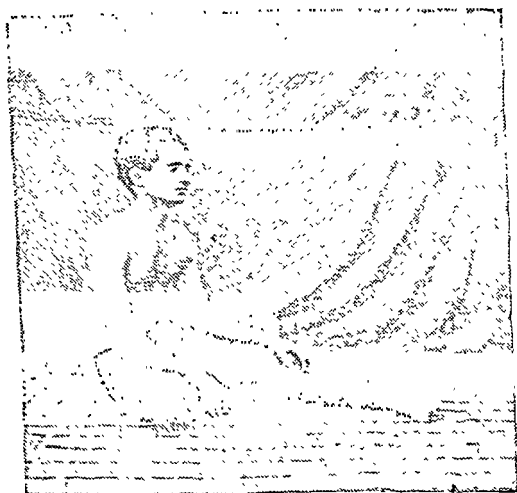
चित्र——४२

कि दाहिने हाथसे एड़ी जमाते समय अंडकोप बायें हाथसे ऊपर उठाकर थामे रखिये। कुछ लोग एड़ी जांघके नीचे और कुछ लोग शिश्नके ऊपर भी जमाते हैं, पर ये तरीके गलत हैं। एड़ी ठीक तरहसे जम जानेपर दाहिने पैरका पूरा तलवा बायें पैरकी जांघसे सटा दीजिये (चित्र४२)। इसके अनंतर फैलाया हुआ बायां पैर घुटनेसे मोड़कर ऊपर उठाइये और उसे दाहिने पैरकी जांघके ऊपरसे लाकर दाहिनी ओर फर्शपर टिका दीजिये (चित्र ४३)।
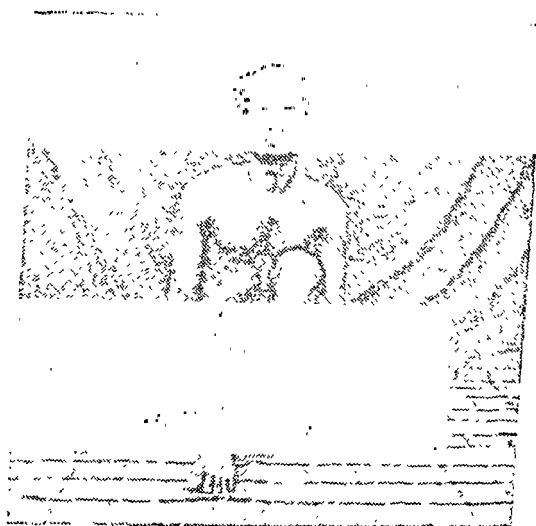
चित्र—४३

यहांतक जो कुछ किया गया है वह आसनके मुख्यांशके लिए तैयारी रूपमें किया गया है क्योंकि इस आसनमें महत्त्वकी क्रिया मेरुदंडकी मरोड़ जो इसके बादकी क्रियामें होगी। अब बायें पैरके घुटनेको टेकके रूप इस्तेमाल करते हुए दाहिने हाथको घुटनेके पार लाकर दाहिने कंधे जोड़के पिछले भागको उसपर अड़ा दीजिये और पूरे धड़को बायीं ओ मोड़िये जिसमें दाहिने कंधेका बायें पैरके घुटनेपर खूब दबाव पड़े। धड़क मोड़ बढ़ाने और कंधेका घुटनेपरसे फिसलना रोकनेके लिए आगे ब हुए दाहिने हाथसे बायें पैरका अंगूठा मजबूतीसे पकड़ लीजिये, पर सा ही इस बातका खयाल रखिये कि कुहनीपर इतना जोर न पड़े कि उसके भंग होनेकी संभावना प्रस्तुत हो जाय। कुछ लोग इसी अवस्थाको अर्द्ध मत्स्येंद्रासनकी पूर्णावस्था मानते हैं, पर बहुमत बायां हाथ पीठकी ओरसे घुमाकर उससे दाहिने पैरका वंक्षणके नीचेका भाग पकड़नेके

पक्षमें है। इन दोनों क्रियाओंसे धड़का मोड़ तो पूरा हो जाता है, पर ग्रीवाकी कशेरुकाओंपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके लिए सिर बायीं ओर घुमाकर यहांतक ले जाइये कि दाहिना कंधा और ठुड्डी एक सीधमें हो जायं। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ४४)। सीना बराबर सीधा रखिये, नीचेकी ओर झुकने न पाये। यह इस आसनका एक ओरके मोड़का रूप हुआ। अब दूसरी ओरसे भी यही सब क्रियाएं कीजिये (चित्र ४५) और इस प्रकार बारी-बारीसे दोनों ओरका आसन करते जाइये।

चित्र—४४

समय

आरंभमें इस आसनकी पूर्णावस्थामें सिर्फ पांच सेकंड रहना काफी होगा। एक-एक ओरके आसनमें एक-एक मिनटसे अधिक लगानेकी

जरूरत नहीं है, पर उपचारके रूपमें इसका सहारा लेनेपर समय आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है।
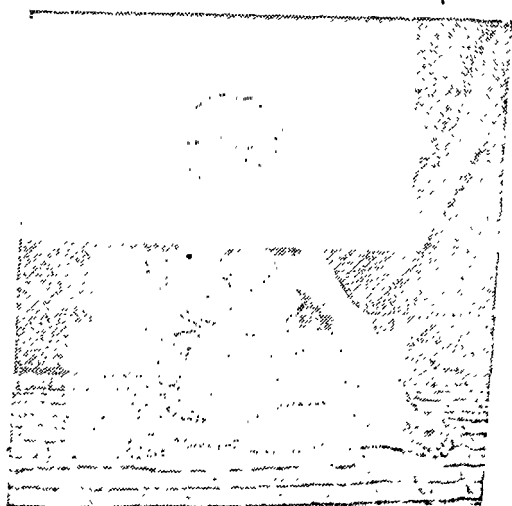
चित्र—४५

व्यायामात्मक लाभ

मेरुदंडके स्वस्थ रहनेसे स्वास्थ्य और जवानीकी स्फूर्ति बनी रहती है, पर उसका स्वास्थ्य तभी ठीक रह सकता है जब उसका अच्छा व्यायाम होता रहे और उसमें लोच बनी रहे। इसलिए उसका व्यायाम ऐसा होना चाहिए जिसमें उसे सब ओर ले जाना पड़े। स्वभावतः वह आगे, पीछे, दाहिने और बायें झुक सकता है और उसमें दाहिनी तथा बायीं ओर मरोड़ भी लायी जा सकती है। सर्वांगासन, हलासन, पश्चिमतानासन आदिमें उसका झुकाव आगेकी ओर और मत्स्यासन, भुजंगासन, शलभासन,

धनुरासन आदिमें पीछेकी ओर होता है। इस प्रकार प्रथम चार क्रियाएं तो इन आसनोंमें हो जाती हैं, दाहिनी और बायीं ओरकी मरोड़ शेष रह जाती है जो अर्द्धमत्स्येंद्रासनमें अच्छी तरह हो जाती है। यही नहीं, इसमें दाहिनी और बायीं ओरका झुकाव भी होता है। इसमें मेरुदंडकी अस्थियों-के साथ ही उससे निकलनेवाली नाड़ियोंका भी अच्छा व्यायाम होता है। इन विशेषताओंके कारण मेरुदंडके व्यायामवाले आसनोंमें इसे महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हो जाता है। उदरके विभिन्न अंगोंका भी इसमें व्यायाम हो जाता है।

व्यायामात्मक लाभ

इस आसनमें पीठ, पेटके नलों, पैरों, ग्रीवा, बाहुओं, कटि, वस्ति-प्रदेशके निचले भाग और सीनेकी नाड़ियोंका अच्छा तनाव होनेसे उन्हें बड़ा लाभ होता है जिसके फलस्वरूप कोष्ठबद्धता दूर हो जाती और जठराग्नि तीव्र हो जाती है। विकृत यकृत और प्लीहा तथा निष्क्रिय वृक्कों-के लिए भी यह लाभदायक होता है। कटि, पीठ और जोड़ोंका दर्द इससे जल्द ही चला जाता है। यदि उपर्युक्त आसनोंके साथ इसे किया जाय तो विशेष लाभ होनेकी आशा की जा सकती है।

मयूरासन

मयूरासन नाम पड़नेका कारण यह है कि इसकी पूर्णावस्थामें अभ्यासी-की आकृति ठीक मयूर अर्थात् मोरकी-सी हो जाती है जिसमें पैर तो उसकी लम्बी पूंछका स्थान ग्रहण करते हैं और हाथ पैरोंका।

विधि

फर्शपर घुटनोंके बल बैठ जाइये और दोनों हाथोंको कुहनीसे कलाईतक मिलाकर फर्शपर हथेलीके बल इस प्रकार उलटे रखिये कि कुहनियां तो नाभिके नीचेके भागपर रहें और उंगलियां पैरोंकी दिशामें। अभिप्राय

यह कि हाथोंको इस प्रकार रखिये कि आगे चलकर शरीरके पड़ी हुई अवस्था ग्रहण करते समय वह पैरोंका काम देनेवाले हाथोंपर टंगा रहे। मयूरके पैरों और आपके हाथोंमें अंतर यह होगा कि पैरोंके पंजे आगेकी
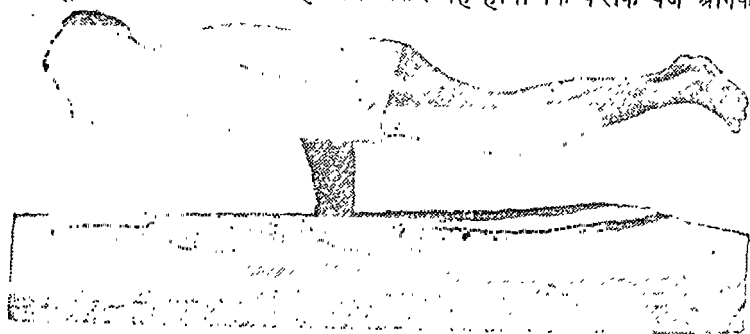
चित्र—४६

ओर रहते हैं और हाथके पंजे पीछेकी ओर रहेंगे। पंजोंको इस रूपमें रखनेका कारण यह है कि इससे शरीरका भार संभालने और संतुलन बनाये रखनेमें सहूलियत होती है।

हाथोंके उक्त रूप ग्रहण कर लेनेपर पैरोंको पास-पास रखते हुए पीछे फैला दीजिये और सिर नीचेकी ओर झुकाकर पैरोंको फर्शसे इस कदर ऊपर उठाइये कि आपका पूरा शरीर फर्शके समानांतर हो जाय। कलाईके ऊपरका भाग फर्शपर लंबके रूपमें न रहकर कुछ आगेकी ओर बढ़ा रहेगा। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ४६)।

नये अभ्यासीके लिए सांस रोक रखना आवश्यक होता है क्योंकि पूर्णावस्थामें अभ्यासीको ज्यादा जोर लगाना पड़ता है जिसमें सांस रोकनेसे सहायता मिलती है, लेकिन अभ्यास बढ़ जाने, पेशियोंके अभ्यस्त हो जानेपर ज्यादा जोर लगानेकी जरूरत नहीं पड़ती इसलिए श्वसन-क्रिया साधारण रूपमें चलने दी जाती है। यह आसन कुछ कठिन भी होता है इसलिए इसे अंतमें करना अच्छा होता है।

योगी लोग वस्तिक्रिया (एनिमाका एक प्रकार) के बाद प्रायः यह आसन किया करते हैं क्योंकि यह बड़ी आंतमें रुका हुआ गंदा पानी बाहर निकालनेमें सहायक होता है, पर इसके लिए किये जानेवाले मयूरासनका रूप उपर्युक्त रूपसे कुछ भिन्न होता है। इस बदले हुए रूपमें पैर सटे और फर्शके समानांतर न रहकर अगल-बगल फैले और कुछ ऊपर उठे रहेंगे जिससे वे नाचनेके लिए तैयार मोरकी फैली हुई पूंछका रूप ग्रहण कर लेंगे। यह अंतर करनेका कारण यह है कि मयूरासनके मूल रूपमे पेड़ूपर जोर देनेके लिए मलद्वारकी पेशियोंका पूरा संकोच करना पड़ता है, पर आंतकी धुलाई उद्देश्य होनेपर नितंबकी पेशियोंको अंशतः संकुचित रखते हुए मलद्वारकी पेशियोंको ढीला कर देना पड़ता है। इस स्थितिका अभ्यास हो जानेपर ही वस्तिक्रियाका आरंभ किया जा सकता है।

समय

आरंभमें मयूरासनकी पूर्णावस्थामें तीन-चार सेकंड रहना काफी होता है। अभ्यास बढ़नेके साथ समय भी एक मिनटतक बढ़ा दिया जा सकता है।

व्यायामात्मक लाभ

इस आसनमें वस्तिदेशीय धमनीका प्रवाह रुककर पाचनांगोंकी ओर होने लगता है जिसके फलस्वरूप उन्हें अधिक मात्रामें रक्तकी प्राप्ति होती और वे स्वस्थ रहते हैं। उदरके भीतरी भागपर दवाव पड़नेसे भी इन अंगोंकी शक्ति वढ़ती है।

वज्रासन

योगशास्त्रमें "वज्र" शब्दका अर्थ शिश्न है और इसी अर्थको दृष्टिमें रखकर इस शब्दके आधारपर इस आसनका नामकरण हुआ है, पर इसमें तथा इसके वर्द्धित रूप सुप्तवज्रासनमें व्यायाम मुख्यतः वस्तिदेशका ही होता है, इसलिए यह नाम वास्तविक रूपका द्योतक नहीं माना जा सकता। हां, यह बात अवश्य है कि यह वस्तिदेशके साथ-साथ शिश्नके लिए भी लाभदायक होता है।

चित्र--४७

विधि

कंवलपर दोनों पैर सीधे फैलाकर वैठ जाइये और वायां पैर घुटनेसे मोड़कर जांघसे इस प्रकार मिलाइये कि वह नितंबके सामने फर्शपर टिक जाय और सीनेका वायां भाग ऊपर उठे हुए घुटनेपर अड़ा रहे। इसके वाद दाहिनी ओर थोड़ा झुकते हुए वायां नितंव कुछ ऊपर उठाइये, दाहिना हाथ दाहिनी जांघके पास फर्शपर टिकाकर झुके हुए धड़को सहारा दीजिये और वायें हाथसे वायें पैरको टखनेके पास पकड़ लीजिये।

इसके अनंतर पकड़ा हुआ वायां पैर हाथके सहारे नितंवकी वायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर इस प्रकार फर्शपर टिकाइये कि वायां नितंव पैरसे घिर जाय, एड़ी वाहरकी ओर निकली रहे, तलवा ऊपरकी ओर रहे और उंगलियां दाहिनी दिशामें रहें। अव दाहिने पैर, नितंव आदिके संवंधमें ठीक इसी क्रमसे सारी क्रियाएं कीजिये। दोनों पैरोंके यथास्थान स्थापित हो जानेपर हाथोंको घुटनोंपर रख दीजिये। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ४७)।

इस आसनका एक रूपांतर भी है। इसमें पैरोंको वाहरकी ओरसे न लाकर अर्थात् नितंवोंको उनसे न घेरकर नितंवोंके नीचे रखते हैं और अभ्यासी उन्हींपर गुदा रखकर बैठता है। इस अवस्थामें एक पैरकी उंगलियां दूसरे पैरकी उंगलियोंसे कुछ फासलेपर न रहकर पुच्छास्थिके पीछे पार करती हैं।

इस आसनमें आंखें वंद कर ध्यान भी किया जाता है इसलिए यह ध्यानात्मक आसन भी कहा जा सकता है।

जिनके घुटनोंमें लोच न हो उन्हें इस आसनका अभ्यास सतर्कता-पूर्वक करना चाहिए। पहले धीरे-धीरे घुटनोंका मोड़ वढ़ानेका प्रयत्न किया जाय और जव मोड़ पूरा होने लगे तो पूर्णावस्थावाली क्रियाएं की जायं।

व्यायामात्मक तथा आमयिक लाभ

इस आसनमें नाभिदेशपर अधिक असर होनेसे वहांसे निकलनेवा
नाड़ियोंको अच्छा लाभ पहुंचता है। पाचन-क्रियामें सहायक होनेके कार
अग्निमांद्यके रोगी इससे अच्छा लाभ उठा सकते हैं। पैरों और जांघों
नाड़ियों आदिको भी इससे लाभ होता है और घुटनों आदिमें वातवि
हो तो वह चला जाता है।

सुप्त वज्रासन

यह कोई स्वतंत्र आसन नहीं है, बल्कि वज्रासनका ही वर्द्धित रूप है
सुप्त वज्रासन नाम होनेका कारण यह है कि इसमें अभ्यासीको सीधे
बैठकर चित लेटना पड़ता है।

विधि

ऊपर वज्रासनके जो दो रूप दिये गये हैं वे दोनों ही इसमें काममें ला
जा सकते हैं। वज्रासनकी कोई एक पूर्णावस्था प्राप्त करनेके बा
चित लेटनेका प्रयत्न किया जाता है, पर यह क्रिया एकाएक न होकर क्रम
क्रमसे ही होनी चाहिये। पहले हाथोंको टेकके रूपमें फर्शपर अड़ाकर
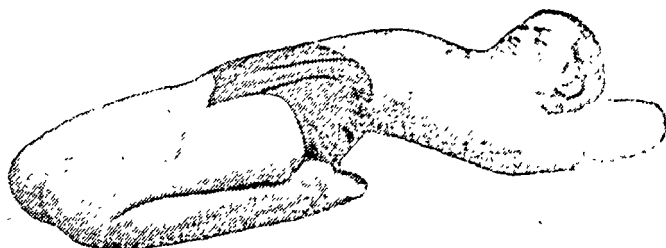
चित्र—४८

उनके सहारे लेटिये और इसके बाद एक हाथ कुहनीसे मोड़कर शरीरका
उस ओरका भार कुहनीपर ही डालिये और दूसरे हाथसे भी यही क्रिया

कीजिये। अब दोनों कुहनियोंका सहारा हटाकर कंधोंके पृष्ठभागके सहारे धड़ फर्शपर अड़ा दीजिये। आरंभमें मेरुदंडमें काफी वक्रता रहेगी और फर्शसे उसका स्पर्श न हो सकेगा, पर अभ्यास बढ़नेके साथ-साथ मेरुदंडकी वक्रता कम होती जायगी और उसका फर्शके साथ संपर्क बढ़ता जायगा। इसका अच्छा अभ्यास हो जानेपर सिर धीरे-धीरे ऊपर उठाइये और एक हाथ उसके नीचेसे ले जाकर दूसरी ओरकी कंधसंधि थाम लीजिये। अब दूसरे हाथसे भी वैसा ही कीजिये। दोनों कुहनियां सिरसे बाहरकी ओर कुछ निकली रहेंगी। सुप्त शब्दको सार्थक करनेके लिए आंखें बंद कर लीजिये। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ४८)। कुछ लोग हाथोंको सिरके नीचे न रखकर उनसे पैरोंको थामे रहते हैं। इस आसनमें टखनोंकी संधियोंपर ज्यादा जोर पड़ता है इसलिए उनका ध्यान रखना आवश्यक होता है। कहते हैं कि सिद्ध योगी इस आसनमें घंटों सोया करते हैं।

चक्रासन

चक्रासनकी पूर्णावस्थामें अभ्यासी अपने शरीरकी आकृति चक्र या वृत्तके समान बनानेका प्रयत्न करता है और यही इस आसनका यह नाम पड़नेका कारण है। देहातमें इसे "बेंती' कहते हैं क्योंकि इसमें शरीरको बेंतकी तरह झुकाना पड़ता है। अगर पश्चिमतानासन खड़े-खड़े किया जाय तो यह उसका उलटा रूप होगा। उसमें आगेकी ओर झुककर पैरोंका अंगूठा पकड़नेकी कोशिश की जाती है और इसमें पीछेकी ओर झुककर एड़ी छूने या टखना पकड़नेका प्रयत्न होता है और भार पैरोंके साथ-साथ हाथों-पर भी होता है। बचपनमें मेरुदंड लचीला रहनेकी हालतमें यह आसन करना आसान होता है, पर अवस्था अधिक होनेके कारण मेरुदंडका लचीलापन कम हो जानेपर इसे करना कुछ कठिन होता है।

विधि

हाथोंको कूल्होंपर और पैरोंको दस-बारह इंचके फासलेपर रखकर सीधे खड़े हो जाइये। अब घुटनोंको सीधे रखते हुए धड़को कमरपरसे पीछेकी ओर मोड़िये और कुछ मुड़ जानेपर हाथोंको सिरके ऊपरसे इस प्रकार लाइये कि हथेलियां पीठकी ओर रहें। अगर आप चाहें तो हाथोंको कूल्होंपर न रखकर खड़े होनेके साथ ही ऊपर उठा ले सकते हैं। जब कमर और धड़ इस कदर झुक जायं कि हाथ नितंबोंके सामने आ जायं तो घुटनोंको थोड़ा मोड़कर धीरे-धीरे झुकते हुए हथेलियोंको फर्शपर टिका दीजिये यह क्रिया इतमीनानके साथ धीरे-धीरे होनी चाहिए, जल्दी करनेकी कोशि[illegible] नहीं होनी चाहिए, नहीं तो झटकेके साथ गिर जानेकी संभावना रहेगी अब हाथोंको, जो आरंभमें पैरोंसे बहुत दूर रहेंगे, धीरे-धीरे पैरों[illegible] नजदीक ले जानेकी कोशिश कीजिये। अभ्यास बढ़ते जानेके साथ [illegible] निकटतम पहुंचते जायंगे। यों तो लोच काफी बढ़ जानेपर टखने भी पक[illegible] जा सकते हैं, पर प्रयत्न एड़ियोंको छूनेका ही होना चाहिए और यही [illegible]

आसनकी पूर्णावस्था होगी (चित्र ४६)। इस अवस्थामें तीन मिनट रहना काफी होता है। इसके बाद हाथोंको ऊपर उठा लीजिये और धड़ धीरे-धीरे ऊपर उठाकर आरंभिक अवस्थामें पहुंच जाइये।
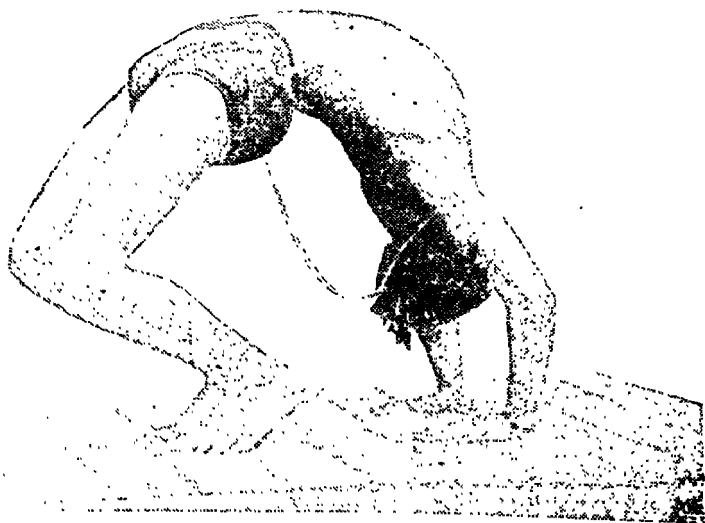
चित्र—४९

इस आसनकी पूर्णावस्था कुछ अन्य विधियोंसे भी प्राप्त की जाती है। दीवारकी ओर पीठकर उससे तीन फुटके फासलेपर खड़े हो जाइये और हाथोंको सिरके ऊपरसे ले जाकर हथेलियां दीवारपर टिका दीजिये। अब उन्हें क्रमशः नीचेकी ओर खसकाते जाकर फर्शपर टिकानेका प्रयत्न कीजिये। कुछ लोग किसी साथीके हाथों या पीठका सहारा लेकर धड़ झुकाते और हथेलियां फर्शपर जम जानेपर सहारा हटा देते हैं। पीठके बल लेटकर भी यह आसन करनेकी कोशिश की जाती है। हाथोंको उलटकर कंधोंके पास और पैरोंको घुटनोंसे मोड़कर नितंबोंके पास फर्शपर टिकाते

और फिर हाथों और पैरोंपर भार देते हुए धड़ और कमर ऊपर उठाते जाते हैं और तब हाथोंको पैरोंकी ओर बढ़ानेकी कोशिश करते हैं। हस्तासन (पृष्ठ ५७) से भी, जिसमें सिर फर्शसे ऊपर रखते हुए धड़ और पैरोंको शीर्षासनकी अवस्थामें और शरीरका सारा भार हाथोंपर रखते हैं, यह अवस्था प्राप्त की जाती है। उसमें सिर्फ पैरोंको पीछेकी ओर मोड़कर फर्शपर टिका देना होता है।

व्यायामात्मक लाभ

इस आसनमें शरीरके प्रत्येक अंग, विशेषकर मेरुदंड और गर्दनका व्यायाम होता है जिससे सबको अच्छा लाभ पहुंचता है। इससे शरीरमें स्फूर्ति आती, शक्तिका संचार होता और कार्य करनेमें उत्साह मालूम होता है। इससे धनुरासन और भुजंगासनसे होनेवाले लाभ भी होते हैं।

सिंहासन

सिंहासनमें अभ्यासीकी आकृति जबड़े फैलाये और जीभ निकाले हुए ——शिकारपर हमला करनेके लिए तैयार——सिंहकी-सी हो जाती है और यही यह नाम पड़नेका कारण है।

विधि

कंबलपर पैरोंको फैलाकर बैठ जाइये। अब दाहिना पैर घुटनेसे मोड़ लीजिये और हाथके सहारे तलवेका रुख ऊपरकी ओर कीजिये। इसके बाद सिर्फ दाहिने नितंबपर भार देते हुए बैठे रहकर बायां घुटना कुछ ऊपर उठाइये और दाहिना पैर बायें नितंबके नीचे ले जाकर रखिये। पैर ठीक तरहसे जम जानेपर दाहिना नितंब कुछ ऊपर उठाइये और शरीरका सारा भार दाहिनी एड़ीपर डाल दीजिये। इस स्थितिमें तलवा अंशतः पीछेकी ओरसे नजर आता रहेगा और उंगलियां जांघसे कुछ बाहर निकली

रहेंगी। एड़ीपर अच्छी तरह बैठ जानेपर बायां पैर भी घुटनेसे मोड़िये और उसे दाहिने पैरके नीचेसे ले जाकर दाहिने पैरकी तरह दाहिने नितंबके नीचे रखिये। अब आपकी स्थिति ऐसी हो जायगी कि आप जांघों और एड़ियोंपर, जो जमीनपर टिकी रहेंगी, समान भार देते हुए आरामसे बैठे रह सकें। धड़ आगेकी ओर कुछ झुका और नितंब पीछेकी ओरसे कुछ उठे रहेंगे।

चित्र—५०

अब पूरे हाथोंकी पेशियां खूब कड़ी कर और उंगलियां पूरी फैलाकर सामनेके घुटनोंपर जमा दीजिये। रीढ़ और धड़ सीधा रखिये और कंधोंसे घुटनोंपर दबाव डालते हुए सीना बाहर निकालिये।

इसके अनंतर सिंहासनकी मुख्य क्रियाकी ओर बढ़िये । जबड़ो पूरा फैला दीजिये, जीभ जहांतक संभव हो बाहर निकालिये और दृ भ्रूमध्य या नासाग्रपर जमाइये । अगर आप चाहें तो ठुड्डी कंठकू बैठाकर जालंधरबंध भी बना सकते हैं, पर यह जरूरी नहीं है । य जालंधरबंध बनाना हो तो दृष्टि भ्रूमध्यपर ही रहेगी । इन क्रियाओं कर लेनेपर आपकी आकृति ठीक शिकारपर टूट पड़नेके लिए तैय सिंहकी-सी हो जायगी और यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ५०) इस समय श्वसन-क्रिया मुखसे ही विशेप रूपसे होगी, नाकका उपयो बहुत कम होगा ।

व्यायामात्मक लाभ

शारीरिक या आध्यात्मिक दृष्टिसे इसका विशेप महत्त्व नहीं है जबड़ोंको फैलाने और जीभ बाहर निकालनेसे गर्दनकी पेशियोंमें लोच आतं है; घुटनोंपर दबाव पड़ने, धड़का तनाव होने और सीना बाहर निक लनेसे पेटके नलोंका नियंत्रण होता है; रीढ़ सीधी रखने तथा एड़ियोंपर जमकर बैठनेसे बस्तिदेशकी पेशियोंका संकोच होता है । ये सारी बातें जालंधर आदि बंधोंके, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, अभ्यासमें विशेप रूपसे सहायक होती हैं इसलिए उनका अभ्यास करनेवालोंके लिए सिंहासनका अधिक महत्त्व है ।

वक्रासन

वक्रासनमें मेरुदंड बारी-बारीसे दाहिने-बायें मोड़ा जाता है और यही यह नाम पड़नेका कारण है । एक प्रकारसे यह अर्द्धमत्स्येंद्रासनका सरल और आरंभिक रूप है । जिन्हें अर्द्धमत्स्येंद्रासन करनेमें कठिनाई होती है वे अगर पहले कुछ दिन इस आसनका अभ्यास कर लें तो उसे करना कठिन नहीं होगा ।

विधि

पैरोंको पास-पास रखते हुए फैलाकर बैठ जाइये। अब दाहिना पैर उठाकर फैलाये हुए बायें पैरके घुटनेके पास लाइये और उसे फर्शपर रखकर पंजेका अंगूठेकी तरफका कुछ हिस्सा बायें पैरके नीचे बढ़ा दीजिये। इसके अनंतर धड़ विना अधिक मोड़े ही दाहिना हाथ पीठकी ओर ले जाकर हथेलीके बल फर्शपर टिकाइये और बायां हाथ बाहरकी ओर दाहिने घुटनेपर इस प्रकार रखिये कि हथेली फर्शपर जम जाय। दाहिना घुटना जहांतक हो सके बायीं ओर बढ़ाइये और इसके साथ ही धड़को दाहिनी ओर जहांतक संभव हो मोड़ ले जाइये। इसमें घुटना अपने स्थानपर स्थिर
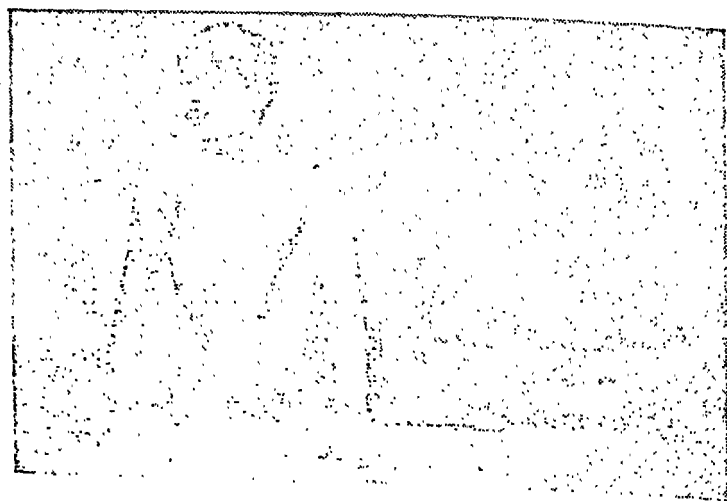
चित्र--५१

रहेगा और उसपर बायीं भुजाका दबाव पड़ता रहेगा। अब सिर इस कदर दाहिनी ओर घुमाइये कि ठुड्डी दाहिने कंधेपर टिक जाय। यही इस आसनकी पूर्णावस्था है (चित्र ५१)। इसके बाद बायीं ओरसे भी यही सब क्रियाएं

कीजिये (चित्र ५२) और तब बारी-बारीसे दोनों ओरका व्यायाम कर लीजिये।
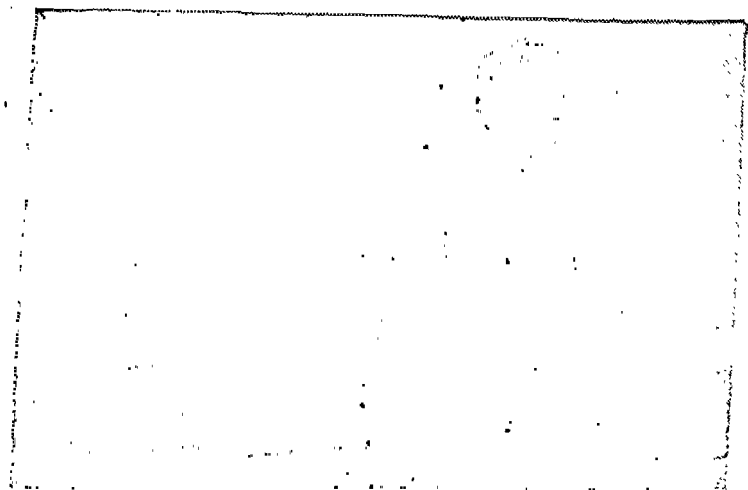
चित्र—५२

समय

बायीं और दाहिनी ओरका मोड़ मिलाकर आप इस आसनमें अधिक-से-अधिक तीन मिनट लगा सकते हैं।

व्यायामात्मक तथा आमयिक लाभ

चूंकि यह आसन अर्द्धमत्स्येंद्रासनका सरल रूप है इसलिए इसमें वे सभी लाभ हो सकते हैं जो अर्द्धमत्स्येंद्रासनसे होंगे, पर इन लाभोंकी मात्रा अपेक्षाकृत कम होगी।

शवासन

यों तो पूर्वोल्लिखित प्रायः प्रत्येक आसनमें जहां कुछ अंगोंका तनाव

और संकोच होता है वहां कुछ अंग ऐसे भी होते हैं जिन्हें विश्राम मिलता रहता है, फिर भी आसनोंका अभ्यास कर लेनेके बाद सारे शरीरका शिथिलन बहुत आवश्यक होता है। शवासन इसी आवश्यकताकी पूर्ति करता है। इसकी पूर्णावस्थामें सारे अंगोंके साथ-साथ मस्तिष्क भी निश्चेष्ट कर दिया जाता है जिससे अभ्यासीकी अवस्था ठीक शव अर्थात् मुर्देकी-सी हो जाती है और यही इस नामका कारण है।

विधि

इस आसनकी विधि समझना बहुत आसान है, पर इसे करना उतना ही कठिन है क्योंकि इसमें सारे अंगोंको शिथिल करनेके साथ ही मनको भी बाह्य विषयोंसे हटाकर एकाग्र करना पड़ता है जो बहुत मुश्किल है। विशेष ध्यान इस बातपर देना है कि लेटकर विश्राम करते समय भी हमारी कुछ पेशियोंमें कुछ-न-कुछ तनाव या संकोच बना ही रहता है, पर इसमे इसका नितांत अभाव होना चाहिए। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मन एकाग्र करनेका अभ्यास करना आवश्यक होगा। अभ्यासीको अपना ध्यान किसी अंगपर केंद्रित कर यह सोचना होगा कि उस अंगका प्रत्येक तंतु मृतवत् शिथिल हो गया है। इसका अभ्यास हो जानेपर विभिन्न अंगोंकी पेशियोंका पूरा-पूरा शिथिलन एक साथ होने लगेगा।
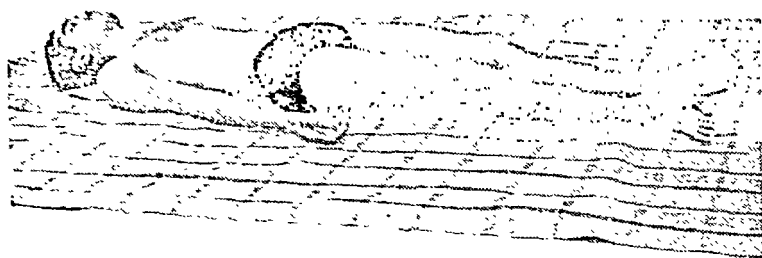
चित्र—५३

पीठके बल लेटकर आंखें बंद कर लीजिये। पैर आपसमें और हाथ

बगलमें शरीरसे सटे रहें। सारा बदन ढीला रहे। शिथिलीकरणका आरंभ आप किसी भी अंगसे कर सकते हैं, पर पैरकी ओरसे चलना अच्छा होगा पेशियां तो ढीली रहेंगी ही, उनके संबंधमें सिर्फ यह खयाल करना है कि वे बिलकुल शिथिल हो गयीं। बारी-बारीसे हर एक अंगके संबंधमें यही खयाल करते जाना है। एक पैरकी उंगलियोंसे शुरूकर तलवा, टखना आदि पार करते हुए वंक्षणतक पहुंचिये और तब दूसरा पैर और फिर वस्तिदेश, उदर, वक्षस्थल, गर्दन और अंतमें मस्तकका शिथिलन कीजिये। (चित्र ५३)। कुछ लोग वक्षस्थलसे आरंभकर क्रमशः नीचेकी ओर उतरते और अंतमें मस्तकका करते हैं। चाहे जहांसे आरंभ कीजिये, अंत-तक पहुंचकर फिर उस क्रमको उलट दीजिये। इसका कुछ अभ्यास हो जानेपर एक अंगका शिथिलन करते समय ही किसी अन्य अंगका भी करनेका अभ्यास कीजिये। इस प्रकारके अभ्याससे कुछ दिनोंमें आप सारे शरीरका शिथिलन एक साथ करने लगेंगे। इसका अच्छा अभ्यास हो जानेपर शिथिलित तंतुओंपर ध्यान केंद्रित कीजिये। यही इस आसन-की पहली अवस्था है।

दूसरी अवस्थामें श्वास-प्रश्वासमें नियमितता, समानता और दीर्घता लानेपर ध्यान केंद्रित किया जाता है। यही इस आसनकी मुख्य क्रिया है। इसे ही सिद्ध करना कुछ कठिन होता है और इसमें समय भी अधिक लगता है। अभ्यासमें सरलता लानेके विचारसे योगाचार्योंने इस क्रियाको तीन भागोंमें विभक्त किया है। श्वास और प्रश्वासकी लंबाईमें समानता नहीं होती और न तो सारे श्वास समान लंबाईके होते हैं और न प्रश्वास ही। अभ्यासके पहले भागमें श्वास-प्रश्वासकी दीर्घता और ह्रस्वतापर केवल ध्यान केंद्रित किया जाता है, उनमें समानता लानेकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरे भागमें उनमें समानता लानेपर ध्यान केंद्रित किया जाता है और तीसरेमें उनमें दीर्घता लानेपर। केवल शरीर-संस्कार चाहनेवालोंको श्वास-संबंधी इस अभ्यासकी जरूरत नहीं पड़ती, हालां

कि वे भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं। योगकी दिशामें आगे बढ़नेवालों-के लिए इसका अभ्यास आवश्यक होता है क्योंकि इससे मन एकाग्र करने-की शक्ति प्राप्त हो जाती है जो ध्यानादिमें सहायक होती है। इस अवस्थाका अभ्यास करते समय इस बातका खयाल रहे कि एक भागका अच्छा अभ्यास हो जानेपर ही दूसरेके लिए प्रयत्न किया जाय।

अगर शवासन ठीक तरहसे हो तो यह नाड़ी-संस्थानके लिए इतना शामक होता है कि अभ्यासीको नींद आने लगती है, पर इस प्रवृत्तिका निवारण होना, विशेषकर आध्यात्मिक अंगोंकी ओर बढ़नेवालोंके लिए, बहुत आवश्यक है। यह आसन सुविधानुसार रोज दो-तीन बार किया जा सकता है।

व्यायामात्मक लाभ

शिथिलनसे पेशियोंकी शक्ति बढ़ जाती और वे अधिक कार्य करने योग्य हो जाती हैं, शिराओंमें रक्तप्रवाह तीव्र हो जानेके कारण सारी क्लांति दूर हो जाती है, नाड़ी-संस्थानको बल प्राप्त होता है और मानसिक शक्ति काफी बढ़ जाती है।

आमयिक लाभ

रक्तभार कम करने और नाड़ी-दौर्बल्य तथा उसके कारण उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करनेमें यह आसन बहुत सहायक होता है।

यौगिक क्रियाएं

विपरीतकरणी

व्यायामात्मक आसनोंके अतिरिक्त कुछ और भी यौगिक क्रि
हैं जो आसनोंसे मिलती-जुलती हैं और उन्हींकी तरह शरीर-संस्कार
योगाभ्यासमें सहायक हुआ करती हैं। विपरीतकरणी उन्हीं क्रियाओ
से एक है। इसका यह नाम होनेका कारण यह है कि इसकी पूर्णावस्थ
सारा शरीर विपरीत अर्थात् उलटी स्थितिमें रहता है। शीर्षासन, जि
कुछ लोग विपरीतकरणी भी कहते हैं, और सर्वांगासनमें भी शरीर
स्थिति उलटी ही होती है और सर्वांगासनसे तो यह बहुत कुछ मिलत
जुलती भी है, पर अंतर यह है कि सर्वांगासनमें धड़ और पैर फर्शपर समको
बनाते हैं तथा जालंधरबंधके सहारे अवटुका ग्रंथियोंके व्यायामद्वारा स
शरीरको प्रभावित किया जाता है और इसमें धड़ सीधे ऊपर न जाक
तिरछा रहता है जिससे ठुड्डी सीनेसे कुछ दूरीपर रहनेके कारण जाल
धरबंध बनानेकी स्थितिमें नहीं रहती। शीर्षासनमें शरीरका भार सि
और हाथोंपर होता है, पर इसमें शरीरका भार धड़के ऊपरी हिस्सेप
होता है।

विधि

शरीरकी सारी पेशियोंको ढीला और मनको एकाग्र कर पीठके बल
लेट जाइये और हाथोंको फैलाकर बगलमें रख लीजिये (चित्र ५४)।
अब सर्वांगासनकी तरह पैरोंको धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए फर्शके साथ
समकोण बनाइये। घुटने बराबर तने रहेंगे (चित्र ५५,५६,५७)। इनके
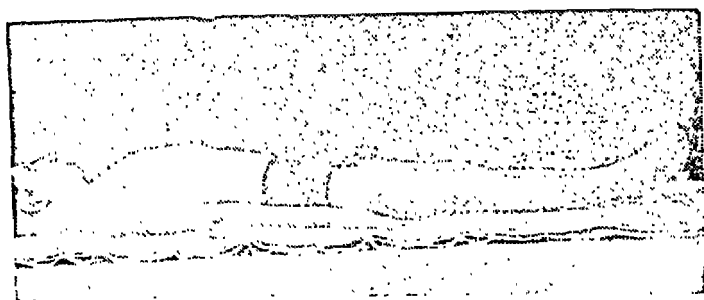
चित्र--५४
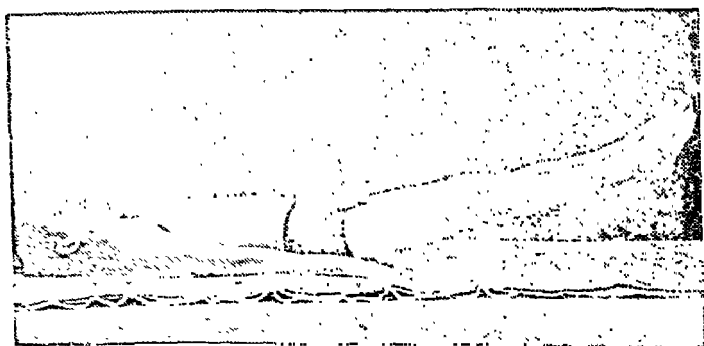
चित्र--५५

अनंतर पैरोंको उसी अवस्थामें रखते हुए नितंबोंको कुछ ऊपर उठाकर धड़ टेढ़ा कीजिये और अबतक निश्चेष्ट पड़े हुए हाथोंको कुहनियोंसे मोड़-कर झुके हुए धड़को नितंबास्थिके पास हाथोंका सहारा दीजिये। सिर, गर्दन, कंधों और बाहुओंका पृष्ठभाग फर्शपर टिका रहेगा। कुछ लोग धड़-को पैरोंकी सीधमें तिरछा भी रखते हैं। सीना ठुड्डीसे दूर ही रहेगा। दृष्टि या तो पैरोंकी उंगलियोंपर रहेगी या आंखें बंद कर मन शरीरके किसी भागपर केंद्रित किया जायगा। इसके अनंतर जिह्वा ऊपर उठाकर

चित्र--५६

उसकी ऊपरी सतहसे तालुके कठिन और कोमल भागको दबाइये यही इस क्रियाकी पूर्णावस्था है (चित्र ५८, ५९)। (जिह्वाकी इस क्रियाको जिह्वाबंध कहते हैं जिसका अभ्यास स्वतत्र यौगिक क्रियाके रूप भी कुछ लोग किया करते हैं।)

समय

यह क्रिया चौवीस सेकंडसे आरंभकर रोज कुछ सेकंड बढ़ाते जाइये अगर इसी अवस्थामें योगाभ्यास भी करना हो तो समय बढ़ाकर तीन घंटे तक ले जाया जा सकता है, पर अगर केवल व्यायामकी दृष्टिसे करना चाहते हों तो पांच मिनट करना काफी होगा।

व्यायामात्मक लाभ

इस क्रियासे ग्रीवादेश तथा उसके ऊपरके अंगोंको अच्छी मात्रामें शुद्ध रक्तकी प्राप्ति होती है और अवटुका ग्रंथियोंका कोई खास व्यायाम न होनेपर भी उन्हें अच्छा लाभ पहुंचता है। शरीरकी स्थिति उलटी होने-

के कारण शीर्षासन और सर्वांगासनसे होनेवाले प्रायः सभी लाभ इससे भी होते हैं।

आध्यात्मिक शक्तिके विकासकी दृष्टिसे हठयोगमें इस क्रियाका बहुत अधिक महत्त्व माना जाता है और इसके प्रभावके संबंधमें यहांतक कहा जाता है कि कुछ ही महीनेके अभ्याससे नवयौवन प्राप्त हो जाता है

चित्र—५७
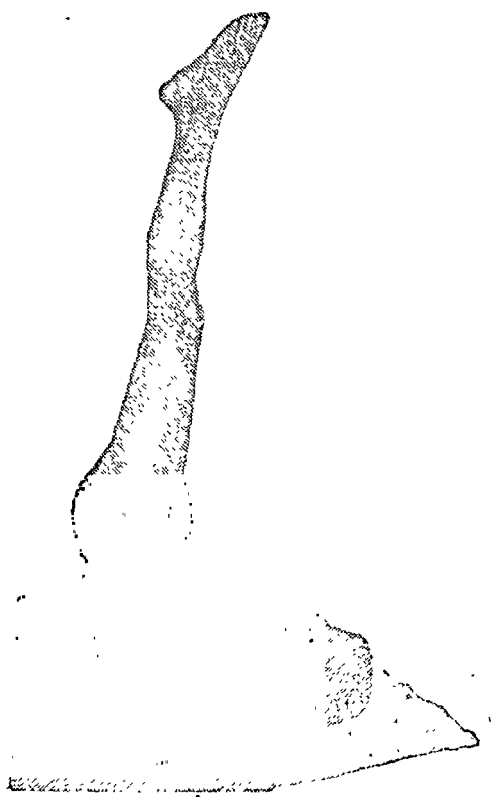
चित्र--५८

क्योंकि इसमें अभ्यासी ऊपर तालुसे लगी हुई जिह्वासे, ललाटसे टपकने-वाले अमृतका पान करता रहता है।

जो बातें शीर्षासन और सर्वांगासनमें वर्जित हैं वे इस क्रियामें भी वर्जित हैं।

चित्र—५९

योगमुद्रा